इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

MHD - 10
प्रेमचंद की कहानियाँ

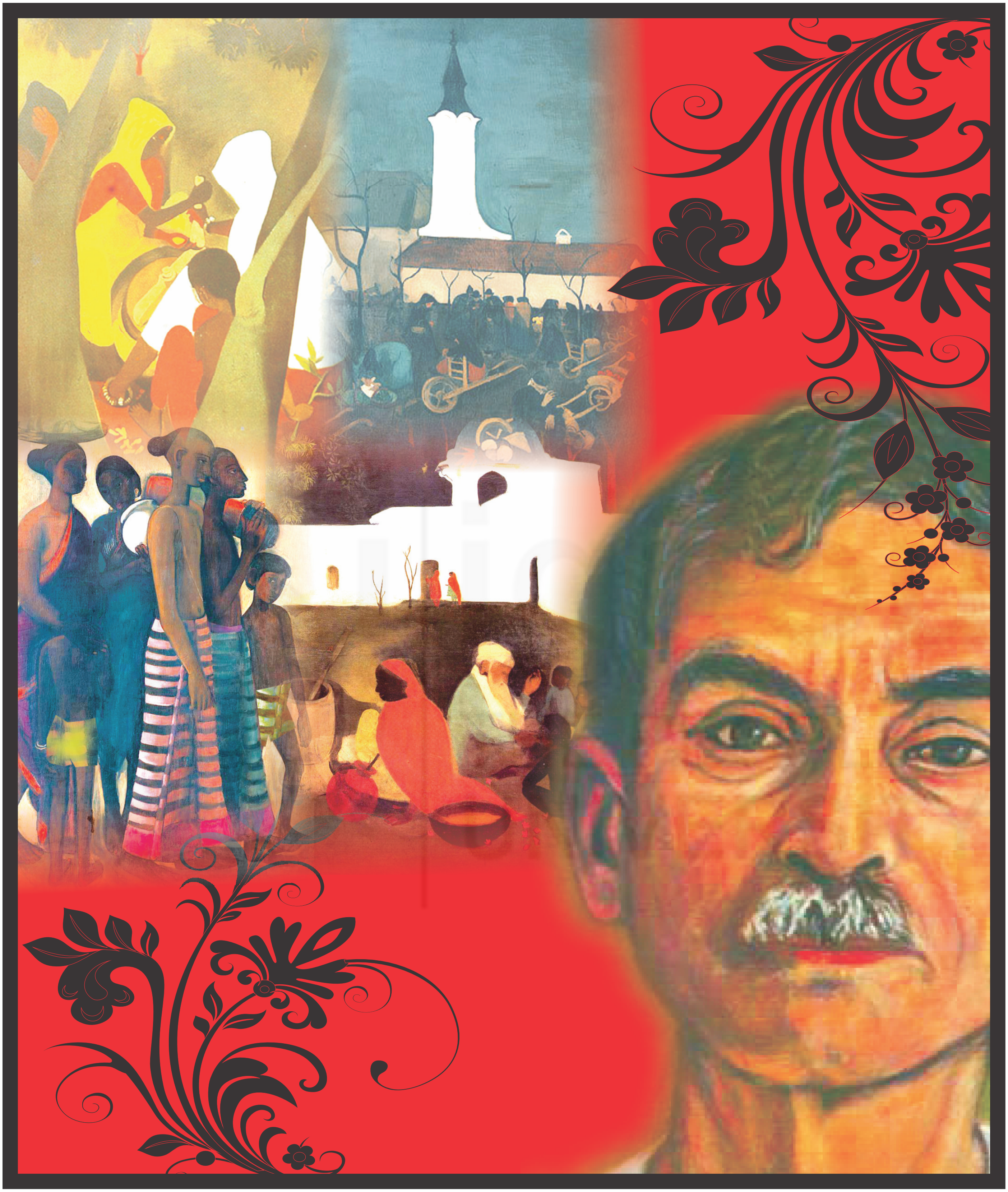

प्रेमचंद की कहानियाँ

इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

MHD-10
प्रेमचंद की कहानियाँ

खंड

3

इकाई 10

'नमक का दारोगा' : विश्लेषण और मूल्यांकन 5

इकाई 11

'विध्वंस' : विश्लेषण और मूल्यांकन 15

इकाई 12

'गुल्ली डण्डा' : विश्लेषण और मूल्यांकन 24

इकाई 13

'जुलूस' : विश्लेषण और मूल्यांकन 38

इकाई 14

'समर-यात्रा' : विश्लेषण और मूल्यांकन 53

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. मैनेजर पाण्डेय
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
भारतीय भाषा केन्द्र जे.एन.यू., नई दिल्ली

श्री ज्ञानरंजन
जबलपुर, मध्य प्रदेश

प्रो. रामदेव शुक्ल
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
दी.,द.,उ.,गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

प्रो. लक्ष्मण सिंह बिष्ट बटरोही
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

प्रो. गोपाल राय
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

डॉ. विजय बहादुर सिंह
भोपाल, मध्य प्रदेश

संकाय सदस्य

प्रो. जवरीमल्ल पारख
प्रो. सत्यकाम
प्रो. शत्रुघ्न कुमार
डॉ. स्मिता चतुर्वेदी
डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
(पाठ्यक्रम संयोजक)

पाठ्यक्रम संयोजक

डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

खंड संयोजन, संशोधन एवं संपादन

डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक	इकाई सं.
डॉ. सत्यकेतु सांकृत प्रोफेसर (हिन्दी) अम्बेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली	10—11
डॉ. अधीर कुमार एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामनगर, नैनीताल, उतराखंड	12
डॉ. अखिलेश दुबे एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज, वाराणसी	13
डॉ. अश्विनी कुमार शुक्ल हिंदी विभाग, पी.जी कॉलेज, बांदा, उत्तर प्रदेश	14

विशेष सहयोग : डॉ. नमिता सत्येन,
डॉ. वावळकर शिवदत्ता बाजीराव,
सुश्री भावना सरोहा

सचिवालयिक सहयोग: श्री मनोज कुमार सहनी

सामग्री निर्माण

सी. एन. पाण्डेय
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)

अक्तूबर, 2016

© *इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय,* 2016

ISBN-978-93-86100-95-5

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110068 से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से प्रो. सत्यकाम, निदेशक, मानविकी विद्यापीठ द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

Paper Used : "Agro based Environment Friendly"

लेजर टाइप सेटिंग : एच. डी. कंम्यूटर क्रॉफ्ट, डब्लु जैड 36ए, लाजवंती गार्डन, नई दिल्ली 110046

मुद्रक : अमेटी ऑफसेट प्रिंटर्स, 12/38, साइट-IV, साहिबाबाद इन्डस्ट्रियल एरिया, गाजियाबाद, (उ.प्र.)

पाठ्यक्रम का परिचय

यह कहानी संबंधी माड्यूलर के दूसरे पाठ्यक्रम 'प्रेमचंद की कहानियाँ' का तीसरा खण्ड है। इस खण्ड में कुल पाँच इकाइयाँ हैं जो इस प्रकार हैं –

इकाई-10 ''नमक का दरोगा'' कहानी का विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई-11 ''विध्वंस'' कहानी का विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई-12 ''गुल्ली डण्डा'' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई-13 ''जुलूस'' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई-14 ''समर-यात्रा : विश्लेषण और मूल्यांकन

इस खण्ड में प्रेमचंद की उपर्यक्त पाँच कहानियों का गंभीर विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इन कहानियों के विश्लेषण से गुजरते हुए आप देखेंगी/देखेंगें कि प्रेमचंद किस तरह बहुत सामान्य से दिखने वाले विषयों को उठाते हैं और फिर कलात्मक ऊँचाई देते हुए एक अविस्मरणीय रचना में बदल देते हैं। अब तक आपने 'नमक का दरोगा' कहानी को जिस तरह पढ़ा होगा, इस खंड में प्रस्तुत विश्लेषण आपको न सिर्फ उससे आगे ले जाएगा बल्कि प्रेमचंद की कहानियों को पढ़ने की नई दिशा भी देगा। 'विध्वंस' के विश्लेषण में आपको प्रेमचंद की वह जनपक्षधर दृष्टि दिखाई देगी जो प्रेमचंद को आम जनता का कहानीकार बनाती है। इसी प्रकार 'गुल्ली डंडा' में भी आपको प्रेमचंद की पक्षधरता दिखाई देगी। 'जुलूस' और 'समर-यात्रा' स्वाधीनता आंदोलन संबंधी प्रेमचंद की सबसे चर्चित कहानियाँ हैं। इस खंड में इन कहानियों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

हमें विश्वास है, इस खंड के अध्ययन के पश्चात आपकी कहानी संबंधी समझ का विस्तार होगा।

शुभकामनाओं सहित।

इकाई 10 'नमक का दारोगा' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 कहानी का आशय

10.3 औपनिवेशिक शासन व्यवस्था और प्रेमचन्द

10.4 मध्यवर्ग का अंतर्विरोध

10.5 कहानी का आधुनिक संदर्भ

10.6 प्रेमचन्द की व्यंग्य दृष्टि

10.7 सारांश

10.8 अभ्यास

10.0 उद्देश्य

खंड-तीन की पहली इकाई आपके सामने है। इसमें आप प्रेमचन्द की कहानी 'नमक का दारोगा' का अध्ययन करेंगे। इस कहानी में औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के तहत एक ईमानदार व्यक्ति की नियति को अत्यंत ही कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस कहानी को पढ़ने के बाद आप औपनिवेशिक शासन व्यवस्था में फैले भ्रष्टाचार, उसकी जनविरोधी आर्थिक नीतियों के साथ साथ उस कुशासन में एक कर्तव्यनिष्ठ अधिकारी के जीवन संघर्ष को न केवल देखेंगे बल्कि उन परिस्थितियों से भी साक्षात्कार करेंगे जिनमें उसे अपने नैतिक मूल्यों की तिलांजलि देते हुए पूंजीपतियों के आगे नतमस्तक होने को मजबूर होना पड़ता है। इसके साथ-साथ आप इस सत्य से भी रू-ब-रू होंगे कि–

- औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के तहत मध्यवर्गीय समाज में किस तरह अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति के लिए नैतिक मूल्यों की उपेक्षा हो रही थी।
- औपनिवेशिक शासन की न्याय व्यवस्था इतनी भ्रष्ट थी कि वह अपने ईमानदार कर्मचारियों की रक्षा भी नहीं कर पाती थी और सफल व्यवसायी ईमानदारी को भी बड़ी महीनी से खरीद सकता था।
- प्रेमचन्द औपनिवेशिक शासन व्यवस्था में व्याप्त अनियमितताओं को न केवल उजागर ही करते हैं बल्कि उसकी कटु आलोचना भी करते है।
- अंग्रेजी शासन की आलोचना करते समय प्रेमचन्द की भाषा न केवल अपने शीर्ष पर होती बल्कि उसमें व्यंग्य की वह धार भी दिखलाई पड़ती है जो सबकुछ को उघाड़ कर रख देती है।
- आज के संदर्भ में इस कहानी की प्रासंगिकता यह है कि पूंजीवादी व्यवस्था में ईमानदारी जैसे मानवीय मूल्यों को भी खरीद फरोख्त की वस्तु की तरह बना दिया जाता है।

इन सब बिन्दुओं को आप इस इकाई में समझ सकेंगे/सकेंगी।

10.1 प्रस्तावना

प्रेमचन्द हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कथाकार हैं। हिन्दी कथा साहित्य के क्षेत्र में कोई भी उनका सानी नहीं है। प्रेमचन्द ने अपने कथा लेखन की शुरूआत नवाब राय के नाम से उर्दू में की थी और इसी नाम से उनकी पहली कहानी 'इश्के दुनिया व हुब्बे वतन' अप्रैल, 1908 में 'जमाना' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। उनका पहला कहानी संग्रह 'सोजे वतन' भी इसी वर्ष यानी जून, 1908 में ही जमाना प्रेस, कानपुर से प्रकाशित हुआ था। इसमें 'इश्के दुनिया व हुब्बे वतन' जिसे कमल किशोर गोयनका के अनुसार 1961 ई. में अमृत राय ने सांसारिक प्रेम और देश प्रेम के रूप में हिन्दी में अनुवाद किया था, के अतिरिक्त 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन', 'यही मेरा वतन है', 'शेख मखमूर' और 'सिल-ए-मातम' जैसी कहानियाँ संग्रहीत थीं। अली जावेद ज़ैदी ने नवाब राय लिखित 'दुनिया का सबसे रतन' को 1906 ई. में प्रकाशित बताते हुए, उसे ही प्रेमचन्द की पहली कहानी बताया है। अमृत राय ने अपनी पुस्तक कलम का सिपाही में इसे 1907 में प्रकाशित होना बताया है। उपन्यासकार के रूप में प्रेमचन्द का प्रवेश भी उर्दू के माध्यम से ही हुआ और उन्होंने इसी में असरारे मआविद उर्फ देवस्थान रहस्य (1903.05) एहम खुर्मा व हम सबाब (1906) एकिसना (1908) एजलव ए ईसार (1912) आदि उपन्यास लिखे। गोपाल राय के अनुसार, प्रेमचन्द ने अपना पहला उपन्यास धनपत राय के नाम से, दूसरा नवाब राय के नाम से और अंतिम प्रेमचन्द के नाम से लिखा था। यह नाम परिवर्तन उनकी सरकारी नौकरी की मजबूरी का परिणाम था।प्रेमचन्द को हिन्दी में प्रतिष्ठित करने वाला पहला उपन्यास सेवासदन (1918) भी पहले उर्दू में ही, 'बाजारे हुस्न' शीर्षक से लिखा गया था। इसके उपरांत प्रेमचन्द ने प्रेमाश्रम (1922) रंगभूमि (1925) कायाकल्प (1926) निर्मला (1927)गबन (1931) कर्मभूमि (1931) और गोदान (1936) आदि उपन्यासों की रचना की। उनका अधूरा उपन्यास मंगलसूत्र भी 1936 में लिखा गया जो उनके निधन के बाद 1948 ई. में प्रकाशित हुआ। उपन्यास के साथ-साथ प्रेमचन्द के कहानी लेखन का सिलसिला, जो सोजेवतन कहानी संग्रह से शुरू हुआ था, लगातार चलता रहा। हाँ सोजेवतन वाली घटना के कारण उन्होंने अपने नाम के संबंध में सावधानी बरतनी शुरू कर दी थी। धनपत राय प्रेमचंद का मूल नाम उस औपनिवेशिक सरकार की सेवा मे थे, जिसने उनकी भावना की अभिव्यक्ति पर अंकुश लगा रखा था। अपनी आत्मा की आवाज को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए उन्हें नवाब राय नामक कल्पित लेखक का चोला ग्रहण करना पड़ा था और जब इस नवाब राय की वास्तविकता का भेद खुला तो उन्हें प्रेमचन्द नाम की शरण लेनी पड़ी। इस नाम से उनकी पहली कहानी 'बड़े घर की बेटी' (1910 ई.) प्रकाशित हुई। इसके बाद से वे प्रेमचन्द के नाम से ही कहानियाँ लिखने लगे और उनकी अंतिम कहानी 'कफन' 1936 में प्रकाशित हुई। प्रेमचन्द ने अपने कहानी लेखन के सफर में लगभग 300 कहानियाँ लिखीं।

प्रेमचन्द के कथा साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने कथा साहित्य को 'मनोरंजन' के स्तर से उपर उठाकर जीवन के साथ जोड़ने का काम किया था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में ''प्रेमचन्द शताब्दियों से पददलित, अपमानित और उपेक्षित कृषकों की आवाज थे। अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-विचार, भाषा-भाव, रहन सहन, आशा-आकांक्षा, दुःख-सुख और सूझबूझ देखना चाहते हैं, तो प्रेमचन्द से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता''। प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में ब्रिटिश शासन में जमींदारों द्वारा किसानों के शोषण और दमन, पुलिस विभाग की रिश्वतखोरी और अत्याचार, सरकारी अमलों में फैले भ्रष्टाचार आदि का चित्रण ही नहीं किया है बल्कि उसका जमकर विरोध भी किया है। प्रेमचन्द ने औपनिवेशिक शासन का

विरोध उसके द्वारा निर्मित संरचनाओं की आलोचनाओं के द्वारा भी किया है। उन्हें जहाँ भी मौका मिलता है, वे सरकार के दफ्तरों, पुलिस, न्याय, शिक्षा आदि संस्थानों, जिनके महत्व का गुणगान करतें सरकार और उनके बुद्धिजीवी समर्थक नहीं थकते, की कड़ी आलोचना करते हैं। इस दृष्टि से प्रेमचन्द की पंच परमेश्वर, नमक का दारोगा आदि कहानियाँ देखीं जा सकती हैं जिनमें एक ओर अंग्रेजी कानून और न्याय व्यवस्था के बरक्श लुप्त होती पंचायती व्यवस्था की अर्थवत्ता और प्रासंगिकता की याद दिलाई गई है तो दूसरी ओर औपनिवेशिक शासन व्यवस्था को भ्रष्टाचार का अखाड़ा बताते हुए उसमें एक ईमानदार आदमी के संघर्ष,उसके अंतर्द्वंद और उसके खरीद फरोक्त को एक प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

10.2 कहानी का आशय

नमक का दारोगा कहानी का जब आप अध्ययन करेंगे तो पाएंगे कि 1913 ई. में लिखित प्रेमचन्द की यह कहानी अपने समय का दस्तावेज है। इस कहानी का केंद्रीय पात्र मुंशी वंशीधर नमक के दारोगा का पद पाकर भी रिश्वत नहीं लेता, जबकि औपनिवेशिक शासन में इस पद की प्रतिष्ठा ही इसमें होने वाली उपरी आमदनी को लेकर ही थी। वंशीधर के पिता इस बात से फूले नहीं समाते कि अब उनकी निम्नमध्यवर्गीय दरिद्रता का अंत हो जाएगा। पर वंशीधर अपने धर्म और आचरण के इतने पक्के हैं कि अवसर प्राप्त होने पर भी अपने पद का दुरुपयोग नहीं करते। वंशीधर तो स्वयं नैतिक मूल्यों के प्रबल समर्थक हैं, यहाँ तक कि उसके लिए जीवन की सुख-सुविधाओं का त्याग कर देने वाले हैं, पर उनके पिता का उन मूल्यों में कोई विश्वास नहीं है। जब वंशीधर नौकरी की तलाश में निकलते हैं तो उनके पिता उन्हें जो सलाह देते हैं उनपर ध्यान दीजिए। उनके पिता कहते हैं ''बेटा! नौकरी मे ओहदे की ओर ध्यान मत देना, यह तो पीर का मजार है। निगाह चढ़ावे और चादर पर रखनी चाहिए। ऐसा काम ढूँढ़ना जहाँ कुछ उपरी आय हो। मासिक वेतन तो पूर्णमासी का चाँद है, जो एक दिन दिखाई देता है और घटते घटते लुप्त हो जाता है। उपरी आय बहता हुआ स्रोत है, जिससे सदैव प्यास मिटती है। वेतन मनुष्य देता है, इसी से उसमें वृद्धि नहीं होती। उपरी आमदनी ईश्वर देता है, इसी से इसकी बरकत होती है।'' पर मुंशी वंशीधर अपने पिता के विपरीत दूसरी विचारधारा के व्यक्ति थे। प्रेमचन्द के शब्दों में ''वंशीधर आज्ञाकारी पुत्र थे। ये बातें ध्यान से सुनीं और तब घर से चल खड़े हुए। इस विस्तृत संसार में उनके लिए धैर्य अपना मित्र था, बुद्धि अपनी पथ प्रदर्शक और आत्मालम्बन ही अपना सहायक था। लेकिन अच्छे शकुन से चले थे, जाते ही नमक विभाग के दारोगा पद पर प्रतिष्ठित हो गये।'' इस उपरी आय वाली नौकरी पाने के बावजूद वंशीधर अपने पिता द्वारा दी गयी नसीहत को अस्वीकार करते हुए अपनी इमानदारी का वह नमूना पेश करते हैं जिसका औपनिवेशिक शासन मे नितांन अभाव था। जिस इलाके में वंशीधर की पदस्थापना हुई उस इलाके के ख्यात रईस पं. आलोपीदीन नमक की कालाबाजारी करते हैं। वंशीधर उनकी नमक से लदी गाड़ीयों को, जो कालाबाजारी के लिए कानपुर ले जायी जा रही थीं, यमुना पार करते समय पकड़ लेते हैं। पं. आलोपीदीन को पैसे की शक्ति पर अमोघ विश्वास है। वे वंशीधर को रिश्वत देकर खरीदने का प्रयास करते है, पर वंशीधर उसे अस्वीकार कर देते है। वे वंशीधर की खुशामद और अपनी दीनता-प्रदर्शन में भी कोई कोर-कसर नहीं छोड़ते। पर वंशीधर पर इसका कोई असर नहीं पड़ता और वे आलोपीदीन को हिरासत में ले लेते हैं। वंशीधर को तत्काल इसका परिणाम भी भुगतना पड़ता है। पंडित आलोपीदीन लक्ष्मी की कृपा से अदालत से बरी हो जाते है और एक सप्ताह के भीतर ही मुंशी वंशीधर नौकरी से मुअत्तल कर दिए जाते हैं। पर धर्म और नैतिक मूल्य पर अटल रहने की उनकी दृढ़ता का आलोपीदीन पर ऐसा असर पड़ता है कि वे उन्हें अन्य सारी सुविधाओं के साथ, छह हजार

रुपये प्रतिमाह वेतन पर, अपनी सारी जायदाद का स्थाई मैनेजर नियुक्त करने का प्रस्ताव लेकर पहुँचते हैं। मुंशी वंशीधर भी कुछ लज्जित से, कुछ सकुचाते हुए यह भारी भरकम वेतन वाली नौकरी को स्वीकार कर लेते हैं और पंडितजी के नौकर बन जाते हैं।

आलोचकों ने प्रेमचन्द की इस कहानी को धन पर धर्म की विजय के रूप मे देखा है और प्रेमचन्द को इसका समर्थक सिद्ध किया है। इसमें संदेह नहीं कि प्रेमचन्द को भी इससे गुरेज नहीं है। पर आज के संदर्भ में इसका दूसरा पाठ ज्यादा समीचीन प्रतीत होता है जिसमे यह निष्कर्ष निकलता है कि पूँजीपति या महाजन रिश्वत देकर ईमानदारी भी खरीद ले सकता है या आज के युग में ईमानदारी भी क्रय वस्तु हो गयी है।

10.3 औपनिवेशिक शासन व्यवस्था और प्रेमचन्द

अपने लेखन के आरम्भिक दौर से ही प्रेमचन्द ने औपनिवेशिक शासन व्यवस्था की नीतियों पर अपनी कड़ी निगाह रखी थी। वे उस प्रबुद्ध मध्यवर्गीय चेतना के प्रतीक थे जो अपनी प्रतिकूल स्थितियों के प्रति विद्रोह करती है। अपनी इसी मानसिकता के कारण ही उन्होंने ब्रिटिश सरकार की हर खामियों को उजागर करने का प्रयास किया। औपनिवेशिक शासन ने पूरी उन्नीसवीं शताब्दी में यह भ्रम फैलाने की कोशिश की थी कि हिन्दुस्तान बौद्धिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से इतना पिछड़ा हुआ है कि वह अपना शासन चलाने योग्य है ही नहीं। उन्होंने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी इस झूठ को प्रचारित करना शुरू कर दिया था। प्रेमचन्द की सतक्र निगाह नें अंग्रेजों के इस षडयंत्र को समझ लिया और अपने साहित्य के माध्यम से, सरकारी सेवा में रहते हुए भी, इसका पर्दाफाश करना शुरू कर दिया। अपने इस कृत्य में वे एकबार फिर से पकड़े भी जा सकते थे, पर तरह तरह की सावधानियॉ बरतते हुए वे घनपत राय के रूप में सरकारी मुलाजिम भी बने रहे और सरकार की पोल भी खोलते रहे। इस काल में लिखीं कई कहानियों में अंग्रेजी शासन व्यवस्था में लुप्त होते 'सत्य और न्याय' की ओर संकेत किया गया है। इस इकाई की कहानी 'नमक का दारोगा' तो इसका सर्वश्रेष्ठ नमूना है। इस कहानी में प्रेमचन्द ने कई महत्वपूर्ण सूचनाएं उपलब्ध कराई हैं, जो ऐतिहासिक दृष्टि से भी उल्लेखनीय हैं। अंग्रेजों नें अपने लाभ के लिए नमक कानून लागू किया था जिसके तहत हिन्दुस्तानियों के लिए नमक तैयार करना गैरकानूनी घोषित किया गया था। ब्रिटिश शासन के संरक्षण में अंग्रेज व्यापारी अपने जहाजों में भारत से कच्चा माल इंग्लैंड ले जाते थे और वहाँ से खाली लौटते जहाजों में नमक भरकर लाते थे जिसे मनमानी कीमत पर बेचा जाता था। इन व्यापारियों के लाभ के लिए ही नमक कानून बनाया गया था। इसके परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलना स्वाभाविक था। प्रेमचन्द इस यथार्थ से परिचित थे और अब आप यह देखेंगे कि अपनी इस कहानी में उन्होंने कितनी बेबाकी से इसे उजागर किया है। कहानी का आरम्भ इस सूचना से होता है– ''जब नमक का नया विभाग बना और ईश्वर प्रदत्त वस्तु के व्यवहार करने का निषेध हो गया तो लोग चोरी छिपे इसका व्यापार करने लगे। अनेक प्रकार के छल प्रपंचों का सूत्रपात हुआ, कोई घूस से काम निकालता था, कोई चालाकी से। अधिकारियों के पौ-बारह थे। पटवारीगिरी का सर्वसम्मानित पद छोड़-छोड़कर लोग इस विभाग की बरकंदाजी करते थे। इसके दारोगा पद के लिए तो वकीलों का भी जी ललचाता था।'' इसके बाद प्रेमचन्द औपनिवेशिक शासन में पनपी उस शिक्षा व्यवस्था को कठघड़े में नंगे पांव खड़ा करते है जिसपर अंग्रेजों को बड़ा गुमान था। प्रेमचंद के शब्दों में ''यह वह समय था जब अंग्रेजी शिक्षा और ईसाई मत को लोग ही वस्तु समझते थे। फारसी का प्राबल्य था। प्रेम की कथाएँ और श्रृंगार रस के काव्य पढ़कर फारसी दॉ लोग सर्वोच्च पदों पर नियुक्त हो जाया करते थे। मुंशी वंशीधर भी जुलेखा की विरहकथा समाप्त करके मजनू और फरदाह के प्रेम-वृतांत को नल और नील की

लड़ाई और अमेरिका के आविष्कार से अधिक महत्व की बातें समझतें हुए रोजगार की खोज में निकले।'' इस तरह प्रेमचन्द इस तथ्य पर भी प्रकाश डालते हैं कि औपनिवेशिक शासन व्यवस्था में लोग फारसी क्यों पढ़ते थे। प्रेमचन्द की दृष्टि में इसका एक कारण तो यह था कि लोग अंगरेजी शिक्षा और ईसाई मत को एक ही वस्तु समझते थे।

प्रेमचन्द ने अपनी इस कहानी में दिखाया है कि औपनिवेशिक शासन व्यवस्था इतनी भ्रष्ट थी कि इसमें भ्रष्टाचार को कलंक नहीं बल्कि सम्मान का दर्जा तक प्राप्त हो गया था। इस व्यवस्था में जो सिद्धांत उभरकर सामने आ रहा था उसका प्रेमचन्द ने जैसा वर्णन किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। मुंशी वंशीधर जब रोजगार की खोज में निकलते है तब उनके पिता उन्हें ऐसी नौकरी की तलाश की सलाह देते हैं जिसमें उपरी आमदनी गुंजाइश हो। वे कहते हैं '' मासिक वेतन तो पूर्णमासी का चाँद है, जो एक दिन दिखाई देता है और घटते घटते लुप्त हो जाता है। उपरी आय बहता हुआ स्रोत है जिससे सदैव प्यास बुझती है। वेतन मनुष्य देता है, इसी से उसमें वृद्धि नहीं होती। उपरी आमदनी ईश्वर देता है, इसी से उसकी बरकत होती है।'' यह निश्चित रूप से भ्रष्टाचार और बेईमानी को स्थापित करने वाला वह सिद्धांत है जो औपनिवेशिक शासन में फल फूल रहा था।

प्रेमचन्द ने शुरू से लेकर अंत तक अपनी इस कहानी में अंग्रेजी शासन की आलोचना की है। मुंशी वंशीधर पंडित आलोपीदीन के सारे प्रलोभनों को अस्वीकार करते हुए उन्हें गिरफ्तार कर लेते हैं। अदालत में उनकी पेशी होती है और वे वहाँ से अपने पैसे के बल पर न केवल बरी ही हो जाते है बल्कि मुंशी वंशीधर जैसे कर्तव्यनिष्ठ और ईमानदार अधिकारी को मुअत्तल भी करा देते हैं। प्रेमचन्द ने आरोपी आलोपीदीन के अदालत में पहुँचने का जो चित्रण किया है वह भी औपनिवेशिक शासन की न्याय व्यवस्था की आलोचना ही है। वे कहते हैं '' किन्तु अदालत मे पहुँचने की देर थी। पंडित आलोपीदीन इस अगाध वन के सिंह थे। अधिकारी वर्ग उनके भक्त, अगले उनके सेवक, वकील मुख्तार उनके आज्ञा पालक और अरदली, चपरासी और चौकीदार तो उनके बिना मोल के गुलाम। उन्हें देखते ही लोग चारों तरफ से दौड़े। सभी विस्मित हो रहे थे। इसलिए नहीं कि आलोपीदीन ने क्यों यह कर्म किया बल्कि इसलिए कि वह कानून के पंजे में कैसे आए! ऐसा मनुष्य जिसके पास असाध्य साधन करने वाला धन और अनन्य वाचालता हो, वह क्यों कानून के पंजे में आए। प्रत्येक मनुष्य उनसे सहानुभूति प्रकट करता था। बड़ी तत्परता से इस आक्रमण को रोकने के निमित्त वकीलों की एक सेना तैयार की गयी। न्याय के मैदान में धर्म और धन में युद्ध ठन गया। वंशीधर चुपचाप खड़े थे। उनके पास सत्य के सिवा न कोई बल था, न स्पष्ट भाषण के अतिरिक्त कोई शस्त्र। गवाह थे किन्तु लोभ से डॉवाडोल।'' प्रेमचन्द इसके आगे अदालती कार्यवाही का जो चित्रण करते हैं उसमें औपनिवेशिक शासन की न्याय व्यवस्था की सारी पोल पट्टी खोलकर रख देते हैं। स्वयं प्रेमचन्द के शब्दों में ''मुकदमा शीघ्र समाप्त हो गया। डिप्टी मजिस्ट्रेट ने अपनी तजवीज मे लिखा, पंडित आलोपीदीन के विरुद्ध दिए गये प्रमाण निर्मूल और भ्रमात्मक हैं। वह एक बड़े भारी आदमी हैं। यह बात कल्पना के बाहर है कि उन्होंने थोड़े लाभ के लिए ऐसा दुस्साहस किया हो। यद्यपि नमक के दारोगा मुंशी वंशीधर का अधिक दोष नहीं है, लेकिन यह बड़े खेद की बात है कि उसकी उदंडता विचारहीन के कारण एक भले मानुष को कष्ट झेलना पड़ा। हम प्रसन्न हैं कि वह अपने काम से सजग और सचेत रहता है, किन्तु नमक से मुकद्दमें की बढ़ी हुई नमकहलाली ने उसके विवेक और बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया। भविष्य में उसे होशियार रहना चाहिए।'' यह सीधे सीधे औपनिवेशिक शासन में प्रत्यंक क्षेत्र में फैले भ्रष्टाचार की कटु आलोचना है।

10.4 मध्यवर्ग का अंतर्विरोध

अब आप देखेंगे कि इस कहानी के माध्यम से प्रेमचन्द ने निम्नमध्य वर्ग की बदहाल आर्थिक स्थिति और उसके फलस्वरूप उस काल में पनपती मध्यवर्गीय मानसिकता और उसके अंतर्विरोध पर भी प्रकाश डाला है। इस कहानी में वंशीधर के पिता उन्हें समझाते हुए कहते हैं, ''बेटा! घर की दुर्दशा देख रहे हो। ऋण के बोझ से दबे हुए हैं। लड़कियाँ हैं, वह घासफूस की तरह बढ़ती चली जाती हैं। मैं कगारे पर का वृक्ष हो रहा हूँ, न मालूम कब गिर पड़ूँ!'' इस प्रसंग से उस काल के मध्यवर्ग की आर्थिक स्थिति का संकेत मिलता है जो निश्चित रूप से उसके अंतर्विरोध को बढ़ाने में उर्वर भूमि का काम करती है।

समाजशास्त्रियों के अनुसार मध्यवर्ग का एक अन्तर्विरोध यह होता है कि वह एक तरफ तो नैतिक मूल्यों का समर्थक होता है, दूसरी तरफ उसे तोड़ने वाला भी वही होता है। आप देखेंगे कि 'नमक का दारोगा' में वंशीधर का परिवार इसका उदाहरण है। स्वयं वंशीधर तो नैतिक मूल्यों के प्रबल समर्थक, यहाँ तक कि उसके लिए जीवन की सुख सुविधाओं का त्याग कर देने वाले हैं, पर उनके पिता उनमें विश्वास नहीं करते। जब वंशीधर नौकरी की तलाश में निकलते हैं तो उनके पिता उन्हें सलाह देते हैं– ''ऐसा काम ढूँढ़ना जहाँ कुछ उपरी आय हो। मासिक वेतन तो पूर्णमासी का चॉद है, जो एक दिन दिखाई देता है और घटते घटते लुप्त हो जाता है। उपरी आय बहता हुआ स्रोत है, जिससे सदैव प्यास मिटती है। वेतन मनुष्य देता है, इसी से उसमें वृद्धि नहीं होती। उपरी आमदनी ईश्वर देता है, उसी से उसकी बरकत होती है, तुम स्वयं विद्वान हो, तुम्हें क्या समझाऊँ। इस विषय में विवेक की बड़ी आवश्यकता है। मनुष्य को देखो, उसकी आवश्यकता को देखो और अवसर देखो, उसके उपरांत जो उचित समझो, करो। गरजवाले आदमी के साथ कठोरता करने में लाभ ही लाभ है। लेकिन बेगरज को दाँव पर पाना जरा कठिन है। इन बातों को निगाह मे बाँध लो। यह मेरी जन्म भर की कमाई है।''यह सीधा सीधा रिश्वत का समर्थन है। पर वंशीधर ऐसा नहीं करते। वे अपने पिता द्वारा दी गई सीख का उल्लंघन करते हुए ठीक इसके विपरीत आचरण करते हैं। पिता की कसौटी पर खरा उतरनेवाला सुनहरा मौका पाकर भी वे उसकी अवहेलना कर देते हैं। वे ईमानदारी की राह पर चलते हैं और अपनी कार्यकुशलता से अपने अफसरों को मोहित कर लेते हैं। जाहिर है इस बीच उपरी बहते हुए स्रोत के जितने भी अवसर आते हैं वे सब ज़ाया कर देते हैं। बहुत जल्द ही वे अपने अफसरान के विश्वास को अर्जित कर लेते हैं पर उनके पिता को उनकी यह ईमानदारी फूटी कौड़ी नहीं सुहाती। प्रेमचन्द के शब्दों में ''बूढ़े मुंशी जी तो पहले से ही कुड़-बुड़ा रहे थे चलते-चलते इस लड़के को समझाया था, लेकिन इसनें एक न सुनी। सब मनमानी करता है। हम तो कलवार और कसाई के तगादें सहें, बुढ़ापे में भगत बनकर बैठें और वहाँ बस वही सूखी तनख्वाह! हमने भी तो नौकरी की है और कोई ओहदेदार नहीं थे, लेकिन काम किया, दिल खोलकर किया और आप ईमानदार बनने चले हैं। घर में चाहे अँधेरा हो, मस्जिद में अवश्य दिया जलायेंगे। खेद ऐसी समझ पर। पढ़ना-लिखना सब अकारथ गया।'' पर वंशीधर पर इन बातों का कोई असर नहीं पड़ता और वे अपनी ईमानदारी की राह पर निकल पड़ते हैं। इसके बाद कहानी में वह घटना घटती है जिससे आप सब अबतक परिचित हो ही चुके हैं। दातागंज, जहाँ पर मुंशी वंशीधर नमक के दारोगा के पद पर पदस्त हैं, इलाके के सबसे प्रतिष्ठित जमींदार पंडित आलोपीदीन नमक की कालाबाजारी करते हैं। उनकी नमक से लदी गाड़ियों को यमुना का पुल पार करते समय दारोगा वंशीधर रोक लेते हैं। आलोपीदीन उन्हें रिश्वत देने का प्रस्ताव करते हैं। वे वंशीधर को रिश्वत देकर खरीदना चाहते हैं। वंशीधर द्वारा इसे अस्वीकृत कर देने पर वे रिश्वत की रकम एक हजार से बढ़ाकर चालीस हजार तक पहुँचा देते हैं। वंशीधर पर इसका कोई असर नहीं पड़ता।

वे आलोपीदीन को हिरासत में ले लेने का हुक्म देते हैं। पर कहानी यहीं नहीं समाप्त होती है। इसके बाद आलोपीदीन अदालत से बरी हो जाते है और वंशीधर को नौकरी से मुअत्तल कर दिया जाता है। प्रेमचन्द के शब्दों में "वंशीधर ने धन से बैर मोल लिया था, उसका मूल्य चुकाना अनिवार्य था। कठिनता से एक सप्ताह बीता होगा कि मुअत्तली का परवाना आ पहुँचा। कार्यपरायणता का दंड मिला। बेचारे भग्न हृदय, शोक और खेद से व्यथित होकर घर चले।" पर घर पहुँचकर उन्हें जिन स्थितियों का सामना करना पड़ता है वह मध्यवर्ग की मानसिकता और उसके उसके अंतर्विरोध को और भी उजागर कर देता है। पिता तो पिता उनकी माता और पत्नी भी मुंशी जी के इस कृत्य की निंदा करती नजर आती हैं। यह एक ऐसा भ्रष्ट समाज है जिसमें ईमानदारी को पुरस्कृत करने के बदले दंडित किया जाता है। ईमानदारी की राह पर चलने वाले को समाज तो बर्दाश्त नहीं ही कर पाता है, अपने घर में भी उसे जहालत झेलनी पड़ती है। प्रेमचन्द का यह चित्रण देखिए " जब मुंशी जी इस दुरवस्था में घर पहुँचे और बूढ़े पिता ने समाचार सुना तो सर पीट लिया। बोले, जी चाहता है कि तुम्हारा और अपना सर फोड़ लूँ। बहुत देर तक पछता-पछताकर हाथ मलते रहे। क्रोध में कुछ कठोर बातें भी कहीं और यदि वंशीधर वहाँ से टल न जाते तो अवश्य ही क्रोध विकट रूप धारण करता। वृद्धा माता को भी दुःख हुआ। जगन्नाथ और रामेश्वर यात्रा की कामनाएँ मिट्टी में मिल गयीं। पत्नी ने तो कई दिन तक सीधे मुहँ से बात भी नहीं की।" अब यहाँ कहानी में एक नाटकीय मोड़ आता है। पंडित आलोपीदीन मुंशी वंशीधर के घर पहुँचते हैं और वे उन्हें सारी सुख सविधाओं सहित एक अच्छे प्रतिमाह के वेतन पर अपनी जमींदारी का स्थाई मैनेजर नियुक्त करने का प्रस्ताव देते हैं। मुंशी जी भी आत्मग्लानि के साथ कुछ सकुचाते हुए उसे स्वीकार कर लेते हैं और पंडित जी के नौकर बन जाते हैं। "यह मध्यवर्ग के विरोधाभास का अन्यतम उदाहरण है।

10.5 कहानी का आधुनिक संदर्भ

आलोचकों ने इस कहानी को प्रेमचन्द की नैतिक मूल्यों के प्रति निष्ठा और प्रतिपादन का अन्यतम उदाहरण माना है।कहानी में वंशीधर आलोपीदीन का बाल भी बाँका नहीं कर पाते। बल्कि वे खुद नौकरी से मुअत्तल कर दिए जाते हैं। पर धर्म और नैतिक मूल्य पर अटल रहने की उनकी दृढ़ता का आलोपीदीन पर ऐसा असर पड़ता है कि वे उन्हें अन्य सारी सुविधाओं के साथ, छह हजार रुपये प्रतिमाह के वेतन पर, अपनी सारी जायदाद का स्थाई मैनेजर नियुक्त करने का प्रस्ताव लेकर उनके घर पहुँचते हैं। कहानी के अनुसार "मुंशी वंशीधर ने उस कागज को पढ़ा तो कृतज्ञता से आँखों में आँसू भर आये। पंडित आलोपीदीन ने उनको अपनी सारी जायदाद का स्थाई मैनेजर नियुक्त किया था। छह हजार वार्षिक वेतन के अतिरिक्त रोजाना खर्च अलग, सवारी के लिए घोड़े, रहने को बँगला, नौकर-चाकर मुफ्त। कम्पित स्वर में बोले- पंडित जी मुझमें इतना सामर्थ्य नहीं है कि आपकी उदारता की प्रशंसा कर सकूँ। किन्तु मैं ऐसे उच्च पद के योग्य नहीं हूँ।" वंशीधर आगे कहते हैं "आप जैसे कीर्तिवान, सज्जन पुरुष की सेवा करना मेरे लिए सौभाग्य की बात है। किन्तु मुझमें न विद्या है, न बुद्धि, न वह स्वभाव जो इन त्रुटियों की पूर्ति कर देता है। ऐसे महान कार्य के लिए एक बड़े मर्मज्ञ अनुभवी मनुष्य की जरूरत है।" पंडित आलोपीदीन उनकी एक बात नहीं सुनते और अपने अहसान तले दबे एक कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति को आखिरकार अपना नौकर बनने हेतु राजी कर ही लेते हैं। प्रेमचन्द के शब्दों में "वंशीधर की आँखें डबडबा आयीं। हृदय के संकुचित पात्र में इसका एहसान न समा सका। एक बार फिर पंडित जी की ओर भक्ति श्रद्धा की दृष्टि से देखा और काँपते हुए हाथ से मैनेजरी के कागज पर हस्ताक्षर कर दिये।"मुंशी वंशीधर द्वारा पंडित

आलोपीदीन की नौकरी स्वीकार कर लेने को आलोचकों ने धन पर धर्म की विजय के रूप में देखा है और प्रेमचन्द को इसका समर्थक सिद्ध किया है। इसमें संदेह नहीं कि प्रेमचन्द को भी इससे गुरेज नहीं है। पर आज के संदर्भ में इस कहानी का एक दूसरा पाठ भी संभव है और इसे किसी भी दृष्टि से नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। यह कतई जरूरी नहीं है कि आज का पाठक या आलोचक प्रेमचन्द के पाठ को ही ग्रहण करे। इस कहानी का एक पाठ यह भी हो सकता है कि पूँजीपति या महाजन रिश्वत देकर ईमानदारी भी खरीद ले सकता है या आज के युग में ईमानदारी भी क्रेय वस्तु हो गयी है। आलोपीदीन, कहानी के अनुसार, ''उस इलाके के सबसे प्रतिष्ठित जमीन्दार थे। लाखों रुपये का लेन देन करते थे, इधर छोटे से बड़े कौन ऐसे थे जो उनके ऋणी न हों। व्यापार भी बड़ा लम्बा चौड़ा था। चलते पुर्जे आदमी थे। अंग्रेज अफसर उनके इलाके में शिकार खेलने आते और उनके मेहमान होते। बारहों मास सदाव्रत चलता था।'' ऐसे प्रभावशाली, प्रतिष्ठित, और समृद्ध जमीन्दार-महाजन को वंशीधर अपनी नैतिकता से पराजित कर देते हैं। पर यह पूँजीपति-महाजन इतनी जल्दी हार नहीं मानता। जिस वंशीधर को आलोपीदीन सीधे रिश्वत देकर नहीं खरीद सका उसे वह आकर्षक नौकरी देकर खरीद लेता है। महाजन हर चीज पैसे से खरीद लेने में समर्थ होता हैः यहाँ तक कि ईमानदारी भी। यही इस कहानी के दूसरे पाठ का निष्कर्ष है। आज के आर्थिक उदारीकरण के समय यही इस पाठ का सही तात्पर्य है। यह इस अर्थव्यवस्था के चरित्र को पूरी तरह से अनावृत कर देता है। यहाँ ईमानदारी और योग्यता जैसी चीजें भी खरीदी जा सकती हैं। आज आई.आई.टी., और आई.आई.एम. जैसी तमाम राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर के मान्यता प्राप्त उच्च शिक्षण संस्थानों से बड़ी बड़ी उपाधियाँ हासिल कर छात्र छात्राएँ किसी बहुराष्ट्रीय कम्पनी के हाथों बिकते नजर आते हैं तो यह कहानी स्वतः प्रासंगिक हो जाती है। आज विज्ञापनों के माध्यम जब से बड़ा से बड़ा अभिनेता और खिलाड़ी तक जूता, चप्पल, टूथ पेस्ट, साबुन तेल आदि तक बेचते दिखाई पड़ते हैं तब ऐसा लगता है मानों सारे वंशीधर इन 'आलोपीदीनों' के हाथों बिक चुके हैं। आप लोगों ने पिछले कुछ वर्षों से आई.पी.एल. में होनेवाली नीलामी तो देखी ही होगी। यह वंशीधरों के क्रय किये जाने का सर्वोत्कृष्ठ उदाहरण है। उनका मालिक अपनी अँगुलियों पर अपने माफिक उन्हें नचाता है।

बाजारवाद के इस दौर में हर चीज खरीदी और बेची जा सकती है जिसकी अनुगूँज 'नमक का दारोगा' कहानी में गड़गड़ाहट के साथ सुनाई पड़ती है। नमक की चोरी रोकनेवाला नमक का दारोगा अब नमक के चोर की नौकरी करेगा और वह अपने मालिक की नमकहलाली करता हुआ उसके नमक की रक्षा करने के लिए ईमानदारी से उसकी नमक अदायगी करेगा। इस रूप में यह कहानी आज के संदर्भ में समीचीन प्रतीत होती है। यह एक ईमानदार आदमी की ईमानदारी को कुंद किये जाने की ही कहानी नहीं है बल्कि यह एक ईमानदार आदमी के बिकने की भी कहानी है।

10.6 प्रेमचन्द की व्यंग्य दृष्टि

प्रेमचन्द जब किसी चीज की आलोचना करते हैं तब उनकी व्यंग्य शक्ति अपने चरम पर होती है। यह कहानी निश्चित ही औपनिवेशिक शासन और उसकी नीतियों की कटु आलोचना है और इस कारण इसमें उनके व्यंग्य की अदभुत छटा के दर्शन होते हैं। कहानी का आरंभ ही इन पंक्तियों से होता है ''जब नमक का नया विभाग बना और ईश्वर प्रदत्त वस्तु के व्यवहार करने का निषेध हो गया तो लोग चोरी छिपे इसका व्यापार करने लगे। अनेक प्रकार के छल प्रपंचों का सूत्रपात हुआ, कोई घूस से काम निकालता था, कोई चालाकी से। अधिकारियों के पौ-बारह थे। पटवारीगिरी का सर्वसम्मानित पद छोड़-

छोड़कर लोग इस विभाग की बरकंदाजी करते थे। इसके दारोगा पद के लिए तो वकीलों का भी जी ललचाता था।'' यह वह व्यंग्य है जो औपनिवेशिक शासन व्यवस्था की सारी पोल पट्टी खोल कर रख देता है। इसी तरह जब वंशीधर नौकरी तलाश में निकलते हैं तब उनके पिता जो उन्हें सलाह देते हैं वह अपने आप में एक व्यवस्था के तहत पनपी मनोवृत्ति पर किया गया अद्भुत व्यंग्य है। वे कहते हैं ''ऐसा काम ढूँढ़ना जहाँ कुछ उपरी आय हो। मासिक वेतन तो पूर्णमासी का चाँद है, जो एक दिन दिखाई देता है और घटते घटते लुप्त हो जाता है। उपरी आय बहता हुआ स्रोत है, जिससे सदैव प्यास मिटती है। वेतन मनुष्य देता है, इसी से उसमें वृद्धि नहीं होती। उपरी आमदनी ईश्वर देता है, इसी से इसकी बरकत होती है, तुम स्वयं विद्वान हो, तुम्हें क्या समझाऊँ।'' जिस शासन व्यवस्था में ऐसा सिद्धांत उपजा हो उसमें किसी समाज के ईमानदार होने की कल्पना भर ही की जा सकती है। पंडित आलोपीदीन जब हिरासत में ले लिए जाते हैं तब सभी उनकी निंदा करने लगते हैं। प्रेमचन्द इस पर अपने व्यंग्यात्मक लहजे में कहते हैं ''जिसे दखिए वही पंडित जी के इस व्यवहार पर टीका टिप्पणी कर रहा था, निंदा की बौछारें हो रही थीं, मानो संसार से अब पापी का पाप कट गया। पानी को दूध के नाम से बेचने वाला ग्वाला, कल्पित रोजनामचे भरनेवाले अधिकारी वर्ग, रेल में बिना टिकट सफर करनेवाले बाबू लोग, जाली दस्तावेज बनानेवाले सेठ और साहूकार यह सब के सब देवताओं की भाँति गर्दनें चला रहे थे।''यह है प्रेमचन्द की व्यंग्य शक्ति का कमाल जिसमें किसी भी अनियमितता का बच पाना संभव नहीं है। औपनिवेशिक शासन के तहत पनपी न्याय व्यवस्था पर प्रेमचन्द ने जो कटाक्ष किया है उसका नमूना देखिए– '' किन्तु अदालत में पहुँचने की देर थी। पंडित आलोपीदीन इस अगाध वन के सिंह थे। अधिकारी वर्ग उनके भक्त, अगले उनके सेवक, वकील मुख्तार उनके आज्ञा पालक और अरदली, चपरासी और चौकीदार तो उनके बिना मोल के गुलाम। उन्हें देखते ही लोग चारों तरफ से दौड़े। सभी विस्मित हो रहे थे। इसलिए नहीं कि आलोपीदीन ने क्यों यह कर्म किया बल्कि इसलिए कि वह कानून के पंजे में कैसे आए! ऐसा मनुष्य जिसके पास असाध्य साधन करने वाला धन और अनन्य वाचालता हो, वह क्यों कानून के पंजे में आए। प्रत्येक मनुष्य उनसे सहानुभूति प्रकट करता था। बड़ी तत्परता से इस आक्रमण को रोकने के निमित्त वकीलों की एक सेना तैयार की गयी। न्याय के मैदान में धर्म और धन में युद्ध ठन गया। वंशीधर चुपचाप खड़े थे। उनके पास सत्य के सिवा न कोई बल था, न स्पष्ट भाषण के अतिरिक्त कोई शस्त्र। गवाह थे किन्तु लोभ से डाँवाडोल।'' यह कहानी आद्यंत इस प्रकार के व्यंग्य से भरी पड़ी है।

10.7 सारांश

प्रेमचन्द की कहानी 'नमक का दारोगा' के पाठ का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है।इसमें आपने देखा कि प्रेमचन्द ने कितने कलात्मक रूप में औपनिवेशिक शासन की आलोचना की है। उन्होंने औपनिवेशिक शासन की जनविरोधी आर्थिक नीतियों, प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार और मध्यवर्गीय समाज में व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति के लिए नैतिक मूल्यों की उपेक्षा के सच को जितनी मार्मिकता से अपनी व्यंग्यात्मक भाषा उजागर किया है उसका दीदार आपने किया। इस कहानी में आपने यह भी देखा कि औपनिवेशिक न्याय-व्यवस्था भ्रष्टाचार में इतनी डूब चुकी थी वह अपने ईमानदार अधिकारियों की रक्षा तो नहीं ही कर पाती थी उल्टे एक सफल व्यवसाई उसकी ईमानदारी को खरीद सकता था। सेठ आलोपीदीन का नमक का तस्कर होना और आखिर में मुंशी वंशीधर का उसी के यहाँ नौकर बन जाने के लिए मजबूर हो जाना उस यथार्थ की भयावहता को ही हमारे सामने प्रकट करता है जिसका विकराल रूप आज हमें दिखलाई पड़ रहा है। आज के संदर्भ

में इस कहानी की प्रासंगिकता यह है कि बाजारवाद के इस अर्थतंत्र ने ईमानदारी जैसे मानवीय मूल्य को भी क्रेय बना दिया है। ।

10.8 अभ्यास

1. प्रेमचन्द की कहानी 'नमक का दरोगा' को नैतिक मूल्यों के पतन की कहानी कहना कहाँ तक उचित है? स्पष्ट कीजिए।
2. 'नमक का दारोगा' कहानी अपने समय का दस्तावेज है।' इस कथन पर विचार कीजिए।
3. इस कहानी के परिप्रेक्ष्य मे मध्यवर्गीय अंतर्विरोध पर प्रकाश डालिए।
4. आज के संदर्भ में इस कहानी की प्रासंगिकता पर प्रकाश डालिए।

इकाई 11 'विध्वंस' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 कहानी का आशय

11.3 औपनिवेशिक शासन और जमींदारी प्रथा

11.4 प्रेमचन्द का यथार्थ

11.5 कहानी का शिल्प

11.6 कहानी की भाषा

11.7 सारांश

11.8 अभ्यास

11.0 उद्देश्य

प्रेमचन्द की कहानियाँ पाठ्यक्रम की ग्यारहवीं इकाई आपके समक्ष प्रस्तुत है। इस इकाई में आप प्रेमचन्द की कहानी 'विध्वंस' का अध्ययन करेंगे। इस कहानी में प्रेमचन्द ने ब्रिटिश शासन काल में स्थापित जमींदारी व्यवस्था में जन सामान्य के शोषण और दमन का अत्यंत मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। दो जून के अन्न के लिए तरसते और उसके लिए आजीवन संघर्ष करते भारतीय ग्रामीण जीवन की ऐसी कटु वास्तविकता से आप साक्षात्कार करेंगे जिसमें घुटन है, बेचैनी है, दर्द है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप औपनिवेशिक शासन काल में अभाव,उत्पीड़न और अपमान का जीवन जीने को अभिशप्त निम्न वर्ग की एक ऐसी स्त्री की त्रासदी से साक्षात्कार करेंगे जो अपने आवेग में जमींदार तक का विध्वंस कर डालती है। इसके साथ साथ आप जान सकेंगे/सकेंगी कि–

औपनिवेशिक शासन ने ही जातिगत भेदभाव को बढ़ावा देते हुए जमींदारी प्रथा के अंतर्गत जमींदारों को ऐसा मनमाना अधिकार दे दिया जिसके तहत् वे अपने रैयतों का मनमाना शोषण कर सकें।

जमींदारों के इस शोषण का सबसे कुरूप पक्ष उनके द्वारा अपने रैयतों से लिया जाने वाला बेगार था जिसके तहत जमींदार और उसके कारिंदे उनपर तरह तरह के जुल्म ढाते थे।यह जुल्मों सितम जब कभी अपनी सारी हदें पार कर जाता था तब कभी कभी उन्हें बेजुबान गरीब जनता के विरोध का सामना भी करना पड़ता था।

इस कहानी में भी निःसहाय भूमिहीन एक विधवा जमींदार के बेगार और उसके अत्याचार से आजिज होकर उसके आदेश की अवहेलना करती हुई अपने जीवन की आहुति तक दे डालती है।

इस कहानी में आप प्रेमचन्द के उस यथार्थ से भी साक्षात्कार भी करेंगे जिसे आज की प्रचलित साहित्यिक भाषा में जादुई यर्थाथवाद कहा जाता है। लेकिन अपने इस कथा संसार के निर्माण में कथाकार ने कहीं भाषा को दुरूह नहीं होने दिया है और आद्यंत

कहानी की भाषा सहज और सरल ही दिखाई पड़ती है जो प्रेमचंद की अपनी विशेषता है।

11.1 प्रस्तावना

प्रेमचन्द हिन्दी के सबसे महत्वपूर्ण कथाकार हैं। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में जब हिन्दी कहानी 'घुटुरन चलत रेणु तन मण्डित' वाली स्थिति में थी तब प्रेमचन्द का पदार्पण हिन्दी कथा क्षेत्र में हुआ और फिर हिन्दी कहानी उनके द्वारा परिमार्जित और परिष्कृत होकर अपने सुगठित राह पर चल पड़ी। प्रेमचन्द ने अपने कहानी लेखन की शुरूआत नवाब राय के नाम से उर्दू से की और इन्हें ही उर्दू-हिन्दी कहानी को अपने समय की आत्मा से जोड़ने वाला कथाकार माना जाता है। नवाब राय से प्रेमचन्द तक का सफर एक ऐतिहासिक घटना है और इसके परिप्रेक्ष्य में ही एक सफल कथाकार के विजन को देखना न केवल दिलचस्प बल्कि लाजमी भी होगा। प्रेमचन्द की पहली कहानी नवाब राय के नाम से 'इश्के दुनिया व हुब्बे वतन' 'जमाना' नामक पत्रिका में 1908 ई. में प्रकाशित हुई थी। इसी वर्ष इनका प्रथम कहानी संग्रह 'सोजेवतन' प्रकाशित भी हुआ जिसमें 'इश्के दुनिया व हुब्बे वतन' जिसका उन्होंने 'सांसारिक प्रेम और देश प्रेम' नाम से कालांतर में अनुवाद किया, इसके अतिरिक्त 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन', 'यही मेरा वतन है', 'शेख मखमूर' और 'सिल-ए-मातम' नामक कहानियाँ प्रकाशित हुईं। इन कहानियों में नवाब राय का औपनिवेशिक शासन के विरोध की फुसफुसाहट स्पष्टतः सुनी जा सकती है। इन कहानियों के माध्यम से लेखक ने औपनिवेशिक शासन से मुक्ति की भारतीय आकांक्षा को व्यक्त किया था, जो औपनिवेशिक शासन की नजर में 'राजद्रोह था। इसका परिणाम भी रचनाकार को भुगतना पड़ा। सोजेवतन की सारी प्रतियाँ ंतो अंग्रेज प्रशासन द्वारा जब्त कर ही ली गयीं, इसके लेखक पर भी पाबन्दी लगा दी गई।इस घटना के बाद उन्होंने लिखना तो बन्द नहीं किया, पर 'लेखक' के रूप में अपना नाम 'नवाब राय' से बदलकर 'प्रेमचन्द' रख लिया। इस नाम से उनकी पहली कहानी 'बड़े घर की बेटी' 1910 ई. में जमाना में ही प्रकाशित हुई। यह कहानी औपनिवेशिक शासन में भारतीय ग्रामीण परिवेश की सामाजिक संरचना का प्रामाणिक और सजीव चित्र प्रस्तुत करती है।यहाँ से प्रेमचन्द भारतीय ग्रामीण समाज के वैविध्य को उसकी संपूर्णता में प्रस्तुत करने वाले एक परिपक्व कथाकार के रूप में दिखाई पड़ने लगते हैं। यही कारण है कि प्रेमचन्द की कहानियाँ ग्राम्य जीवन की सुंदर अभिव्यक्ति मानी जाती है। ग्रामीण जीवन को अपनी कहानियों का आधार बनाने के पीछे प्रेमचन्द का जो तर्क है वह उनकी 'प्रेम-द्वादशी' की भूमिका में स्पष्ट हो जाता है। वे लिखते हैं ''जिस देश के 80 फीसदी मनुष्य गावों में बसते हों, उनके साहित्य में ग्राम्य-जीवन ही प्रधान रूप से चित्रित होना स्वाभाविक है। उन्हीं का सुख राष्ट्र का सुख, उनका दुःख राष्ट्र का दुःख और उन्हीं की समस्याएँ राष्ट्र की समस्याएँ हैं।'' प्रेमचन्द के समग्र कथा साहित्य का यही मूल मंत्र है। प्रेमचन्द को ग्रामीण जीवन के यथार्थ चित्रण में जो अदभुत सफलता मिली है उसका कारण यह है कि उन्हें इस जीवन की गहरी अनुभूति थी और प्रथम सूचना के आधार पर ही उन्होंने ग्रामीण समाज का चित्र उकेरा है। वे गाँवों के सरल जीवन पर मुग्ध तो होते ही हैं साथ ही साथ उसकी दुर्दशा पर अपना क्षोभ प्रकट करने में भी काई कोताही नहीं बरतते। यही कारण है कि ग्रामीण समाज का दर्द उनकी कहानियों में स्पष्टतः लक्षित किया जा सकता है।

औपनिवेशिक पराधीनता से जुड़ा भारतीय ग्रामीण समाज का एक पक्ष जमींदारों, महाजनों और ब्राह्मणों द्वारा किसानों और मजदूरों का आर्थिक शोषण था। किसान-मजदूर जन इनके शोषण और अत्याचार से मुक्ति चाहते थे। प्रेमचन्द इस वास्तविकता को समझते थे और इसीलिए उन्होंने ग्रामीण समाज के इस यथार्थ को बेनकाब करने का प्रयास अपनी

'सवा सेर गेहूँ', 'मुक्ति-मार्ग', 'पूस की रात', 'विध्वंस' आदि कई कहानियों में किया है। इन कहानियों में कमजोर,बेबस और लाचार आदमी सहजता में ही उनकी सहानुभूति का पात्र बन जाता है। ग्रामीण समाज में दलितों की दयनीय स्थिति को लेकर तो उन्होंने दर्जनों कहानियाँ लिखी हैं। औपनिवेशिक शासन का एक और तीखा सच दलितों पर जमींदारों और उच्चवर्ग का अत्याचार था।इस दृष्टि से 'विध्वंस', 'सौभाग्य के कीड़े', 'मन्दिर', 'घासवाली', 'सद्‌गति' आदि कहानियाँ महत्वपूर्ण मानीं जा सकती हैं। इनमें दलित समाज के शोषण और उनके संघर्ष को वाणी दी गई है। दलित संवेदना की अपनी सभी कहानियों में प्रेमचन्द दलित समाज के साथ खड़े दिखाई पड़ते हैं।

11.2 कहानी का आशय

विध्वंस कहानी में एक दलित भड़भूजिन पर जमींदार के अत्याचार का चित्रण किया गया है। इस कहानी के केंद्र में 'भुनगी' नाम की एक विधवा और संतानहीन वृद्धा है जो अपने भाड़ में गाँव वालों के दानें भूनकर किसी तरह अपना जीवन व्यापन करती है। उसके पास रहने को कोई अपनी जगह नहीं है और गाँव के जमींदार द्वारा प्रदान की गई भूमि में वह एक झोंपड़ी बनाकर रहती है। वहीं वह अपना भाड़ भी चलाती है और उसी के एक कोने में पड़ी भी रहती है। चूँकि वह गाँव के जमींदार के रहमो करम पर गाँव में रहती है अतः जमींदार उससे हर तरह का बेगार लेता है। वह बेगार के रूप में केवल जमींदार पंडित उदयभानु पांडे के दाने ही नहीं भूनती बल्कि उनके घर का पानी भी भरती है और लाजिमी है कि इसके एवज में उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता। बल्कि जब भी उसे जमींदार की बेगार करनी पड़ती उसे उस दिन भूखे ही सो रहना पड़ता था। पर जमींदार को इसकी कोई चिंता न थी क्योंकि औपनिवेशिक शासनकाल में जमींदारी व्यवस्था में मानवीय संवेदना के लिए कोई स्थान न था और बेगार वाली व्यवस्था का रैयतों द्वारा उल्लंघन करने पर जमींदार द्वारा उन्हें उजाड़ भी दिया जाता था। भुनगी के साथ भी ऐसा ही होता है। वह एक दिन गॉव वालों के दाने भूँजने में व्यस्त रहती है तभी जमींदार के यहाँ से दो बड़े-बड़े टोकड़े अनाज से भरे आ पहुँचते हैं और उसे हुक्म होता है कि वह उन्हें तत्काल भून दे। भुनगी सारा काम छोड़कर जमींदार के काम में लग जाती है फिर भी दिए गए समय पर वह काम पूरा नहीं कर पाती है और जल्दबाजी में काम करने के कारण वह अनाज भी खराब हो जाता है। जमींदार साहब का चपरासी जब भुने हुए अनाज को लेने आता है तब अनाज की स्थिति को देखकर वह भुनगी को बहुत खरी खोटी सुनाता है। उसी रात जमींदार के आदेश से भुनगी की भाड़ खोद दी जाती है और उसका एकमात्र जीने का सहारा उससे छिन जाता है। बहुत सारी मिन्नतों के बाद भी जमींदार का कलेजा नहीं पसीजता है। अंत में बुढ़िया यह निर्णय करती है कि वह फिर से अपने भाड़ का निर्माण करेगी और अपने भूख की ज्वाला को शांत करेगी। वह अपने भाड़ का पुनरुद्धार करने में जी जान से लग जाती है। अभी वह मिट्टी के लोंदे रख रही होती है तभी वहाँ कहीं से जमींदार साहब पहुँच जाते हैं और भुनगी को भांड़ का पुनर्निर्माण करते देख आग बबूला हो उठते हैं। यह उन्हें अपने आदेश की सरासर अवहेलना दिखाई पड़ती है और वे भाड़ को ठोकर से मारकर गिरा देते हैं। अपने पैर से वे नाद को भी गिराने को उद्धत होते हैं तभी बुढ़िया उनके सामने आकर उनके क्रोध को और बढ़ा देती है। जमींदार उदयभान अपने चपरासियों को आदेश देते हैं कि बुढ़िया की भांड़ में आग लगा दी जाए। अपनी भाड़ को जलता देख बुढ़िया इसे बर्दाश्त नहीं कर पाती और उसी आग में वह भी कूद जाती है। एक क्षण में हाहाकार मच जाता है। उसी समय आग की लपट तेज होती है और वह भाड़ के बगल में बनीं किसानों की झोपड़ियों को जलाती हुई पंडित उदयभान के बखार तक को भष्म कर डालती है। ज्वाला और भड़कती है और पंडित जी का भवन भी उस ज्वाला में जलकर खाक हो जाता है।

प्रेमचन्द ने अपनी इस कहानी के माध्यम से औपनिवेशिक शासन काल में जमींदारों के माध्यम से गरीब ग्रामीणों पर होने वाले अत्याचार का तल्ख चित्रण किया है। इन्होंने अपनी इस कहानी में यह भी दिखाया है कि इन बेजुबान ग्रामीणों पर होने वाले अत्याचार पर उस काल में कोई उनकी फरियाद सुनने वाला भी नहीं था। प्रेमचन्द इस बात से भली भाँति परिचित थे कि औपनिवेशिक शासन में इस दमन का कोई प्रतिकार नहीं था। लेखक के सामने इस दमन से निकलने का कोई रास्ता नजर नहीं आता तो वह पड़पीड़ित को दंडित करने के लिए दैवी शक्तियों का सहारा लेने से भी गुरेज नहीं करते है। इस कहानी में भी जमींदार के लोग जब भड़भूजिन की झोंपड़ी और उसके द्वारा नवनिर्मित भाड़ में आग लगा देते हैं तो वह आग ऐसी भड़कती है कि वह जमीन्दार के विशाल भवन तक को भष्म कर देती है। प्रतीक रूप में इसका पाठ इस रूप में भी लिया जा सकता है कि गरीबों पर किया हुआ अत्याचार उनके ही रोश में भष्म हो जाता है।

11.3 औपनिवेशिक शासन और जमींदारी प्रथा

'विध्वंस' कहानी में औपनिवेशिक शासन काल में स्थाई बन्दोबस्त के अंतर्गत स्थापित नई जमींदारी प्रथा के तहत गरीब और लाचार ग्रामिणों के शोषण का तल्ख चित्रण किया गया है। अंग्रेजों ने अपने कर संग्रहण नीति के जमींदारी व्यवस्था लागू की और उनके द्वारा निर्धारित कर अदाएगी के उपरांत जमींदारों को असीमित अधिकार प्रदान कर दिए गए। इस व्यवस्था के तहत जमींदार अपने रैयतों पर किसी तरह का भी अत्याचार कर सकता था और गरीब ग्रामिणों की सुध लेने वाला कोई नहीं था। औपनिवेशिक शासन में गाँव की पूरी जमीन पर जमींदार का अधिकार होता था और कहीं झोपड़ी डालकर गुजर-बसर करने वाले को भी उसे बेगार देनी पड़ती थी। इस बेगार में मानवीय संवेदना का तनिक भी स्थान नहीं था। प्रेमचन्द इस दारुण स्थिति का चित्रण करते हुए लिखते हैं ''वह प्रातःकाल उठती और चारों ओर से भाड़ झोंकने के लिए सूखी पत्तियाँ बटोर लाती। भाड़ के पास ही पत्तियों का एक बड़ा ढेर लगा रहता था। दोपहर के बाद उसका भाड़ जलता था। लेकिन जब एकादशी या पूर्णमासी के दिन प्रथानुसार भाड़ नहीं चलता, या गाँव के जमींदार पंडित उदय भानु पाँड़े के दाने भूनने पड़ते, उस दिन उसे भूखा ही सो रहना पड़ता। पंडित जी उससे बेगार में दाने ही न भुनवाते थे, उसे उसके घर का पानी भी भरना पड़ता था। कभी कभी इस हेतु भी भाड़ बन्द करना पड़ता था। वह पंडित जी के गाँव में रहती थी, इसलिए उन्हें उससे सभी प्रकार के बेगार लेने का पूरा अधिकार था। प्रेमचन्द आगे कहते हैं ''पंडित जी को उसकी चिन्ता न थी क्योंकि एक तो भुनगी दो-एक दिन भुखी रहने से मर नहीं सकती और यदि दैवयोग से मर भी जाती तो उसकी जगह दूसरी गोंड़ को बड़ी आसानी से बसाया जा सकता था। पंडित जी की यही क्या कम कृपा थी कि वह भुनगी को अपने गाँव में बसाए हुए थे।''

प्रेमचन्द ने 'विध्वंस' के माध्यम से जमींदार के शोषण और अपने मातहतों से उनके बेगार लेने का जो चित्र उपस्थित किया है वह प्रतीक रूप में औपनिवेशिक शासन काल में जमींदारों की ज्यादतियों को लगभग उघार सा देता है।स्वयं प्रेमचन्द के ही शब्दों में ''भुनगी का भाड़ आज बड़े जोरों पर था। उसके सामने एक मेला-लगा हुआ था। साँस लेने का भी अवकाश न था। गाहकों की जल्दबाजी पर भी कभी-कभी झुँझला पड़ती थी, कि इतने में जमींदार साहब के यहाँ से दो बड़े -बड़े टोकड़े अनाज से भरे हुए आ पहुँचे और हुक्म हुआ कि अभी भून दो। भुनगी दोनों टोकरे देखकर सहम उठी। अभी दोपहर थी पर सूर्यास्त से पहले इतना अनाज भूनना असंभव था। घड़ी दो घड़ी मिल जाते तो एक अठवारे के खाने भर को अनाज हाथ आता। दैव से इतना भी न देखा गया, इन यमदूतों को भेज दिया। अब पहर रात तक सेंत-मेंत में भाड़ जलाना पड़ेगा; एक नैराश्य

भाव से दोनों टोकरे ले लिए।''पुनः प्रेमचन्द के ही शब्दों में ''चपरासी तो यह ताकीद करके चलते बने और भुनगी अनाज भूनने लगी। लेकिन मन भर अनाज भूनना कोई हँसी तो थी नहीं, उस पर बीच-बीच में भुनाई बन्द करके भाड़ भी झोंकना पड़ता था। अतएव तीसरा पहर हो गया और आधा काम भी न हुआ। उसे भय हुआ कि जमींदार के आदमी आते होंगे। आते ही गालियाँ देंगे, मारेंगे। उसने और वेग से हाथ चलाना शुरू किया। रास्ते की ओर ताकती और बालू नाँद में छोड़ती जाती थी। यहाँ तक कि बालू ठंडी हो गयी, सेवड़े निकलने लगे। उसकी समझ में न आता था, क्या करे। न भूनते बनता था न छोड़ते बनता था। सोचने लगी कैसी विपत्ति है। पंडित जी कौन मेरी राटियाँ चला देते हैं, कौन मेरे आँसू पोंछ देते हैं। अपना रक्त जलाती हूँ तब कहीं दाना मिलता है। लेकिन जब देखों खोपड़ी पर सवार रहते हैं, इसलिए न कि उनकी चार अंगुल जमीन से मेरा निस्तार हो रहा है। क्या इतनी जमीन का इतना मोल है? ऐसे कितने ही टुकड़े गाँव में बेकाम पड़े हैं, कितनी ही बखरियाँ उजाड़ पड़ी हुई हैं। वहाँ तो केसर नहीं उपजती फिर मुझी पर क्यों यह आठों पहर धौंस रहती है। कोई बात हुई और यह धमकी मिली कि भाड़ खोदकर फेंक दूँगा, उजाड़ दूँगा। मेरे सिर पर भी कोई होता तो क्या बौछारें सहनी पड़तीं।''भुनगी के ये शब्द औपनिवेशिक शासन काल में गरीब और असहाय पर हाने वाले अत्याचार को बखूबी हमारे सामने प्रस्तुत कर देते हैं। उस काल में निश्चित ही गरीब ग्रामीण की फरियाद सुनने वाला कोई नहीं था। जमींदारी प्रथा, जो भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के संघर्ष में कोढ़ के समान दिख रही थी, के माध्यम से ब्रितानिया सरकार निरंतर गरीब जन मानस का शोषण कर रही थी। गाँव में किसी तरह अपना जीवन निर्वाह करने वाले भड़भँजे, नाई, घसियारे, दर्जी आदि इस अत्याचार के शिकार थे और जब भी ये जमींदार के बेगार को पूरा करने में असमर्थ होते थे तत्काल उन पर उसका कहर बरस पड़ता था। इस कहानी में भी ऐसा ही होता है। भुनगी जमींदार के आदमियों द्वारा निर्धारित समय सीमा में जब उसका काम नहीं कर पाती है तब उसका भाड़ उसी रात खोद दिया जाता है और भुनगी का एक मात्र सहारा छिन जाता है।इस स्थिति का चित्रण करते हुए कथाकार कहता है ''भुनगी को अब रोटियों का कोई सहारा न रहा। गाँव वालों को भी भाड़ के विध्वंस हो जाने से बहुत कष्ट होने लगा। कितने ही घरों में तो दोपहर को दाना ही मयस्सर न होता। लोगों ने जाकर पंडित जी से कहा कि बुढ़िया को भाड़ जलाने की आज्ञा दे दीजिए, लेकिन पंडित जी ने कुछ ध्यान न दिया। वह अपना रोब न घटा सकते थे। ''प्रेमचन्द ने 'विध्वंस' में यही दिखाने का प्रयास किया है कि यही वह झूठी शान थी जिसके पीछे तत्कालीन जमींदार वर्ग अपना सबकुछ ब्रितानिया सरकार को समर्पित किए जा रहा था। निर्धन ग्रामिणों पर तो उनका खूब रोबदाब था पर अंग्रेज सरकार के एक छोटे से कर्मचारी के समीप भी उनकी सारी हेंकड़ी हवा हो जाती थी।

औपनिवेशिक शासन काल में जमींदार को यह शक्ति प्राप्त थी कि वह अपने रैयतों पर जितनी चाह उतनी मनमानी कर सके। उसका यह अधिकार था कि वह उससे जितना चाहे उतना बेगार ले सके और जो बेगार देने में कोताही बरते उसे दंडित भी कर सके। जमींदार द्वारा भाड़ के विध्वंस के उपरांत जमींदार की आज्ञा के खिलाफ जाकर भुनगी एक बार फिर से अपने जीवन का एकमात्र सहारा अपने भाड़ का पुनरुद्धार करने का प्रयास करती है पर जमींदार के अचानक वहाँ पहुँच जाने पर वह ऐसा नहीं कर पाती है और एक बार फिर से उसके भाड़ को तोड़ दिया जाता है। इस बार भुनगी हलका सा प्रतिरोध भी उत्पन्न करती है। उसके विरोध प्रर्दशन पर जमींदार उसे गाँव छोड़कर चले जाने का आदेश देते हैं।इस बार भुनगी का विद्रोही मन मुखर हो जाता है और वह कहती है ''क्यों छोड़कर चली जाउँ? बारह साल खेत जोतने से आसामी का तकार हो जाता है। मैं तो इस झोंपड़े में ही बूढ़ी हो गयी। मेरे सास-ससुर और उनके बाप-दादे इसी झोंपड़ी में रहे।''बुढ़िया के इस प्रतिकार को जमींदार बर्दाशत नहीं कर पाते और उसके

भाड़ में आग लगा देने का आदेश देते हैं। इसके बाद जो दृश्य उभरता है वह दिल को दहला देने वाला साबित होता है। प्रेमचन्द के शब्दों में ''एक क्षण में हाहाकार मच गया। ज्वाला-शिखर प्रकाश से बातें करने लगी। उसकी लपटें किसी उन्मत की भाँति इधर उधर दौड़ने लगीं। सारे गाँव के लोग उस अग्नि-पर्वत के चारों ओर जमा हो गए। भुनगी अपने भाड़ के पास उदासीन भाव से खड़ी यह लंका दहन देखती रही। अकस्मात वह वेग से आकर उसी अग्नि-कुंड में कूद पड़ी। चारों तरफ से लोग दौड़े, लेकिन किसी की हिम्मत न पड़ी कि आग के मुँह में जाय। क्षणमात्र में उसका सूखा हुआ शरीर अग्नि में समाविष्ट हो गया।''

इस प्रकार प्रेमचन्द ने 'विध्वंस' में औपनिवेशिक शासन काल में जमींदारों के शोषण को चित्रित करने के साथ साथ शोषितों के मन में उठने वाले आक्रोश को भी बखूबी दिखाने का प्रयास किया है और इस चित्रण में उन्हें पर्याप्त सफलता भी मिली है।

11.4 प्रेमचन्द का यथार्थ

प्रेमचंद एक यथार्थवादी कथाकार हैं। यथार्थ के प्रति आग्रह उनकी कहानियों में आरम्भ से ही दिखाई पड़ता है।कहानी के सम्बंध में उनकी अपनी अवधारणा थी जो उन्हें अपने पूर्व के हिन्दी कथाकारों से पृथक यथार्थ के आग्रह के तारतम्य में अलग वैशिष्ट्य प्रदान करती है। अपनी कहानी की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए वे मानसरोवर, भाग-1 के 'प्राक्कथन' में लिखते हैं ''वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ व स्वभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है। उसमें कल्पना की मात्रा कम, अनुभूति की मात्रा अधिक होती है; बल्कि अनुभूतियाँ ही रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन जाती है।''कहानी के सम्बंध में प्रेमचन्द का यह यथार्थवादी दृष्टिकोण 'विध्वंस' के परिप्रेक्ष्य में पूरी तरह खरा उतरता है। प्रेमचन्द का परिवेश ग्रामीण था और ग्रामीण जीवन के अपने अनुभव को ही उन्होंने अपनी इस कहानी में स्थान दिया है। यह कहानी 1921 में प्रकाशित हुई थी और जैसा कि हम सब जानते ही हैं कि यह वही समय था जब हमारा देश औपनिवेशिक शासन के अधीन था और हम स्वाधीनता प्राप्ति हेतु संघर्षरत थे। अंग्रेजों का शोषण और अत्याचार बदस्तूर जारी था और अपनी सुविधा के लिए उसनें जगह जगह धन संग्रहण हेतु अपने एजेंट बैठा रखे थे। जमींदार भी एक तरह से औपनिवेशिक शासन के एजेंट ही थें और और गरीब जनता का मनमाना दोहन कर अंग्रजों के पास पहले से निर्धारित राशि को पहुँचाया करते थे। इसके एवज में अंग्रेजी सरकार ने उन्हें अपने रैयतों का अकल्पनीय शोषण करने की छूट तो दे ही रखी थी, साथ ही उन्हें अपने इलाके में रहने वाले किसी गरीब को बेगार में हीला हवाली करने पर बेदखली का भी अधिकार था।'विध्वंस में यही सब कुछ तो होता है। इस कहानी में प्रेमचन्द ने अपने अनुभवों और आँखिन देखिन घटनाओं के आधार पर' औपनिवेशिक शासनकाल में जमींदारों के अत्याचार का अत्यंत ही तल्ख और यथार्थवादी चित्रण किया है। इस कहानी में भी प्रेमचन्द की सहानुभूति निश्चित रूप से शोषित के प्रति ही है और शोषक के प्रति उनका आक्रोश इस हद तक है कि वे उसे दण्डित करने के लिए ईश्वरीय शक्ति तक का सहारा लेने से भी गुरेज नहीं करतें हैं। 'विध्वंस' कहानी में भुनगी द्वारा जमींदार के आदेश की अवहेलना करने पर जब उसके भाड़ को जमींदार के आदेश पर जला दिया जाता है तब भुनगी इसे बर्दाश्त नहीं कर पाती है और उसी अग्नि में कूद कर वह अपना प्राण त्याग देती है। पर प्रेमचन्द यहीं नहीं रूकते हैं और वे इसे लंका दहन के रूप में चित्रित करते हुए इसी अग्नि में जमींदार के विशाल भवन तक के भष्म हो जाने का बिम्ब खींचते हैं। स्वयं प्रेमचन्द के शब्दों में ''उसी दम पवन भी वेग से चलने लगा। उर्द्धगामी लपटें पूर्व दिशा की ओर दौड़ने लगीं। भाड़ के समीप ही किसानों की कई

झोपड़ियाँ थीं, वह सब उन्मत्त ज्वालाओं का ग्रास बन गयीं। इस भाँति प्रोत्साहित होकर लपटें और आगे बढीं। सामने पंडित उद्‌यभान की बखार थी, उस पर झपटीं। अब गाँव में हलचल पड़ी। आग बुझाने की तैयारियाँ होने लगीं। लेकिन पानी की छीटों ने आग पर तेल का काम किया। ज्वालाएँ और भड़कीं और पंडित जी के विशाल भवन को दबोच बैठीं। देखते ही देखते वह भवन उस नौका की भाँति जो उन्मत्त तरंगों के बीच में झखोरे खा रही हों, अग्नि-सागर में विलीन हो गया और वह क्रंदन-ध्वनि जो उसके भष्मावशेश में प्रस्फुटित होने लगी भुनगी के शोकमय विलाप से भी अधिक करुणकारी थी।'' कभी कहानी के इस अंत को लेकर प्रेमचन्द की बहुत आलोचना भी हुई थी और उनके यथार्थवादी दृष्टिकोण को कठघरे में खड़ा करने का प्रयास भी किया गया था। पर आज प्रेमचन्द की इस और ऐसी अनेक कहानियों के पुनः पाठ की आवश्यकता है। प्रेमचन्द जानते थे कि औपनिवेशिक शासन में गरीब ग्रामीण की फरियाद सुनने वाला कोई नहीं था। अतः वे भी दलितों की तरह अपने संतोष के लिए दैवी शक्तियों का सहारा लेते हैं और अत्याचारी को अतिलौकिक शक्तियों द्वारा दंडित कराते हैं। आज कथा साहित्य में जिस जादूई यथार्थवाद की धूम मची है उसकी भी एक स्पष्ट झलक इस कहानी के अन्त में दिखाई पड़ती है और इस बात की ओर भी इशारा करती हैं कि उत्तर आधुनिकता के तले नई प्रविधि के उपयोग का दम्भ भरने वालों के काफी पहले ही हिन्दी के कथा सम्राट ने इसका सुन्दर नमूना पेश कर दिया था। वैसे प्रतीक रूप में इसका पाठ यह भी हो सकता है कि गरीबों पर किया हुआ अत्याचार उनके ही रोष में भष्म हो जाता है। यह हिन्दी की अपनी जातीय परम्परा है जिसका सुन्दर प्रयोग प्रेमचन्द ने किया है। कभी कबीर ने भी कहा था–

> निर्बल को न सताइये जाकी मोटी हाय,
> मुए खाल की साँस सों, सार भसम होई जाए।

11.5 कहानी का शिल्प

इस खंड में हमलोग विध्वंस कहानी के शिल्प पक्ष पर विचार करेंगे। प्रेमचन्द हिन्दी के प्रथम कहानीकार हैं जिन्होंने परम्परा से चली आती हुई कथा से कहानी के अलगाव को स्पष्ट करते हुए छोटे आकार की कहानी के रूप में हिन्दी कहानी को विकसित किया जिसमें यथार्थ के प्रति आग्रह और अनुभूति की तीव्रता पर अधिक बल दिया गया। प्रेमचन्द की कहानी 'विध्वंस' इसका सुन्दर नमूना है। शिल्प की दृष्टि से यह कहानी आकार में छोटी होने के साथ साथ किस्सागोई और नाटकीयता के सम्मिश्रण पर आधारित है। प्रेमचन्द इस कहानी के आरम्भ में ही एक कथक के रूप में उपस्थित होते हैं और ऐसा लगता है मानों कोई चौपाल में बैठा किस्सा सुना रहा हो और हम सब उसके चारों तरफ बैठकर उसका लुत्फ उठा रहे हों। प्रेमचन्द की इस किस्सागोई का नमूना देखिए-''जिला बनारस में बीरा नाम का एक गाँव था। वहाँ एक विधवा वृद्धा, संतानहीन, गोड़िन रहती थी, जिसका भुनगी नाम था। उसके पास एक धुर भी जमीन न थी चबैना या सत्तू पर निर्वाह करते ही हैं, इसलिए भुनगी के भाड़ पर नित्य भीड़ लगी रहती थी।''प्रेमचन्द बड़ी चतुराई से अपनी कथक वाली भूमिका में न केवल भुनगी बल्कि पूरे गाँव की आर्थिक बदहाली को बयां कर देते हैं। प्रेमचन्द की उपस्थिति इस कहानी में लगातार बनी रहती पर वे अपने लम्बे वकतव्यों के द्वारा दसे बोझिल नहीं होने देते हैं। प्रेमचन्द की लगभग सभी कहानियों में कथक की भूमिका वहीं तक रहती है जहाँ तक वह कहानी के लिए जरूरी होती है इसके बाद प्रेमचन्द कहानी की बागडोर अपने पात्रों को पकड़ाकर नेपथ्य में चले जाते हैं।'विध्वंस' में भी जमींदार के चपरासी और भुनगी तथा स्वयं जमींदार और भुनगी के बीच जो नोंक झोंक हाती है उसे पात्रों की आपसी बातचीत के माध्यम से प्रस्तुत

कर कथाकार ने अपने कथा कौशल का सुंदर नमूना दिया है। इस कहानी में ऐसा लगता है जैसे पाठक इन पात्रों के आपसी वार्तालाप को कहीं छुपकर सुन रहा हो। यह प्रेमचन्द की कथा प्रस्तुति की अपनी विशेषता है जो उन्हें श्रेष्ठ कथाकार की श्रेणी में ला खड़ा करती है।प्रेमचन्द के शिल्प की यह भी विशेषता है कि कहानी के बीच में ही पाठक को कहानी के पात्र के मस्तिष्क में प्रवेश करा देते हैं और अब वह वही सब कुछ सुनने लगता है जो पात्र सोंच रहा होता है।'विध्वंस' कहानी का एक दृश्य देखिए ''उसकी समझ में न आता था, क्या करें। न भूनते बनता था न छोड़ते बनता था। सोंचने लगी कैसी विपत्ति है। पंडित जी कौन मेरी रोटियाँ चला देते हैं, कौन मेरे आँसू पोंछ देते हैं। अपना रक्त जलाती हूँ तब कहीं दाना मिलता है। लेकिन जब देखो खोपड़ी पर सवार रहते हैं, इसलिए न कि उनकी चार अंगुल धरती से मेरा निस्तार हो रहा है। क्या इतनी जमीन का इतना मोल है? ऐसे कितने ही टुकड़े गाँव में बेकाम पड़े रहते हैं, कितनी ही बखरियाँ उजाड़ पड़ी हैं। वहाँ तो केसर नहीं उपजती फिर मुझी पर क्यों आठों पहर धौंस रहती है। कोई बात हुई और यह धमकी मिली कि भाड़ खोदकर फेंक दूँगा, उजाड़ दूँगा, मेरे सिर पर भी कोई होता तो क्यों बौछारें सहनी पड़तीं।''प्रेमचन्द की यह विशेषता है कि वे एक दृश्य को ज्यादा देर तक नहीं चलने देते हैं और बीच में ही उसे रोककर दूसरा दृश्य उपस्थित कर देते हैं इससे कहानी में रोचकता बनी रहती है। देखिए यहाँ भी ऐसा होता है। भुनगी अभी सोंच ही रही है कि कथक एक बार फिर से उपस्थित होता है और कहानी की बागडोर बड़ी चतुराई से पात्रों को पकड़ाकर गायब हो जाता है। प्रेमचन्द का यह दृश्य परिवर्तन देखिए-''वह इन्हीं कुत्सित विचारों में पड़ी हुई थी कि दोनों चपरासी ने आकर कक्रश स्वर में कहा-क्यों री, दाने भुन गये।'' कहानी एक बार फिर से पात्रों के माध्यम से आगे बढ़ने लगती है।इस प्रकार कथक और पात्रों के आपसी वार्तालाप के माध्यम से कहानी आगे बढ़ती जाती है और इस विधान से प्रेमचन्द जो संदेश देना चाहते है वे उसे दे जाते हैं।

प्रेमचन्द की शैली की सजीवता का एक बड़ा कारण उनकी व्यंग्य प्रविधि है।व्यंग्य करते समय उनकी मारक क्षमता बहुत बढ़ जाती है और बातों बातों में ही वे कुछ ऐसा कह जाते हैं जो सारी परिस्थितियों की बधिया उधेड़ कर रख देती है। उनकी शैली का एक नमूना देखिए-''वह पंडित जी के गाँव में रहती थी, इसलिए उन्हें उससे सभी प्रकार की बेगार लेने का पूरा अधिकार था। उसे अन्याय नहीं कहा जा सकता। अन्याय केवल इतना था कि बेगार सूखी लेते थे। उनकी धारणा थी कि जब खाने ही को दिया गया तब बेगार कैसी। किसान को पूरा अधिकार है कि बैलों को दिन भर जोतने के बाद शाम को खूँटे से भूखा बाँध दे। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो यह उसकी दयालुता नहीं है, केवल अपनी हित चिंता है।'' प्रेमचन्द की व्यंग्य क्षमता का एक और नमूना देखिए-'' बुढ़िया के भाड़ की ओर ताका तो बदन में आग सी लग गयी। उसका पुनरुद्धार हो रहा था।बुढ़िया बड़े वेग से उस पर मिट्टी के लोंदे रख रही थी। कदाचित उसने कुछ रात रहते ही काम में हाथ लगा दिया था और सूर्यास्त से पहले समाप्त कर देना चाहती थी। उसे लेशमात्र भी शंका न थी कि मैं जमींदार के विरूद्ध कोई काम कर रही हूँ। क्रोध इतना चिरजीवी हो सकता है इसका समाधान भी उसके मन में न था। एक प्रतिभाशाली पुरुष किसी दीन अबला से इतना कीना रख सकता है उसे इसका ध्यान भी न था।वह स्वभावतः मानव-चरित्र को इससे कहीं ऊँचा समझती थी। लेकिन हा हतभागनी! तूने धूप में ही बाल सफेद किये।'' ये है प्रेमचन्द की विशिष्ट व्यंग्य शैली जिसका दीदार हम उनकी सभी कहानियों में कमोबेश करते हैं।

11.6 कहानी की भाषा

प्रेमचन्द आरम्भ से ही अपनी कहानियों में सरल भाषा के हिमायती रहे है।'विध्वंस' कहानी

इसका सुंदर उदाहरण है। इस कहानी में प्रेमचन्द की भाषा व्यावहारिक और प्रवाहपूर्ण है।इसके शब्द विन्यास व्यंजनापूर्ण और अर्थगर्भित हैं। इसके साथ साथ काव्य शैलीय उपकरणों का प्रयोग कर प्रेमचन्द ने अपनी गद्यात्मक भाषा को बहुत कुछ काव्य की भाषा के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत कर दिया है।प्रेमचन्द जब अपने प्रवाह में होते हैं तब उनकी भाषा का जो सौंदर्य होता है उसका एक विलक्षण नमूना देखिए-''उसी दम पवन भी वेग से चलने लगा। उर्द्धगामी लपटें पूर्व दिशा की ओर दौड़ने लगीं। भाड़ के समीप ही किसानों की कई झोपड़ियाँ थीं, वह सब उन्मत ज्वालाओं का ग्रास बन गयीं। इस भाँति प्रोत्साहित होकर लपटें और आगे बढ़ीं। सामने पंडित उदयभान की बखार थी, उस पर झपटीं। अब गाँव में हलचल पड़ी। आग बुझाने की तैयारियाँ होंने लगीं। लेकिन पानी के छीटों नें आग पर तेल का काम किया। ज्वालाएँ और भड़कीं और पंडित जी के विशाल भवन को दबोच बैठीं। देखते ही देखते वह भवन उस नौका की भाँति जो उन्मत्त तरंगों के बीच में झकोरे खा रही हो, अग्नि-सागर में विलीन हो गया और वह क्रंदन-ध्वनि जो उसके भस्मावेश में प्रस्फुटित होने लगा भुनगी के शोकमय विलाप से भी अधिक करुणाकारी था।''यह है प्रेमचन्द की भाषा और प्रेमचन्द अपनी इसी भाषा शैली के कारण सदैव स्मरणीय रहेंगे।

11.7 सारांश

'विध्वंस' कहानी में एक असहाय वृद्धा पर जमींदार के अत्याचार को चित्रित किया गया है।इस कहानी में प्रेमचन्द ने बड़ी बारीकी से औपनिवेशिक शासन के तहत जमींदारों की उस दरींदगी से हमारा परिचय कराया है जिसने गरीब ग्रामिणों का जीना मुहाल कर रखा था। उस समय एक व्यवस्था के तहत गाँव की पूरी जमीन पर जमींदार का अधिकार होता था और कहीं झोंपड़ी डालकर गुजर-बसर करने वाले को भी उसे बेगार देनी पड़ती थी। इस बेगार में मानवीय संवेदना के लिए तनिक भी स्थान न था। इसका उल्लंघन करने वाला रैयत जमींदार द्वारा बरबाद कर दिया जाता था। गरीब ग्रामीण की फरियाद सुनने वाला कोई नहीं था।प्रेमचन्द को इस बात का अहसास था कि उस अमानवीय व्यवस्था में इस दमन का कोई प्रतिकार नहीं था।अतः वे अपने संतोष के लिए दैवी शक्तियों का सहारा लेने से भी बाज नहीं आते हैं और अत्याचारी को अतिलौकिक शक्ति के द्वारा दंडित कराते हैं। इस कहानी में भी जमींदार के आदमी जब भुनगी के भाड़ और उसके द्वारा ढेर लगाए गये सूखे पत्तों में आग लगा देते हैं तब वह आग ऐसी भड़कती है कि उसमें गाँव की बहुत सारी झोपड़ियों से लेकर जमींदार के विशाल भवन तक भस्म हो जाते हैं। प्रतीक रूप में इसका पाठ इस रूप में भी ग्रहण किया जा सकता है कि गरीब पर किया गया अत्याचार उसके रोष में ही भष्म हो जाता है। शिल्प की दृष्टि से यह कहानी निश्चित ही बेजोड़ है। प्रेमचन्द ने इस कहानी में अपनी व्यंग्य क्षमता और भाषा कौशल का बेजोड़ नमूना प्रस्तुत किया है।

11.8 अभ्यास

1. 'विध्वंस' कहानी में 'भुनगी' के चरित्र की विशेषताएँ बताइए।
2. 'विध्वंस' कहानी की प्रासंगिकता पर विचार डालिए।
3. 'विध्वंस' कहानी की मूल संवेदना को स्पष्ट कीजिए।
4. 'विध्वंस' कहानी के शिल्प विधान पर प्रकाश डालिए।

इकाई 12 'गुल्ली डण्डा' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 'गुल्ली डण्डा' कहानी का रचनात्मक परिवेश

12.3 'गुल्ली डण्डा' अभिव्यक्त सभ्यता-समीक्षा का स्वरूप

12.4 'गुल्ली डण्डा' में व्यक्त जीवन-मूल्य

12.5 'गुल्ली-डण्डा' कहानी में प्रयुक्त सम्प्रेषण-विधि की विशेषताएँ

12.6 वर्तमान भारतीय जीवन-सन्दर्भ में इस कहानी की प्रासंगिकता

12.7 सारांश

12.8 अभ्यास

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप–

- 'गुल्ली डण्डा' कहानी के रचनात्मक परिवेश से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी।
- इस कहानी में अभिव्यक्त सभ्यता-समीक्षा के स्वरूप का परिचय पाएँगे/पाएँगी।
- इस कहानी में व्यक्त जीवन-मूल्यों से परिचित होंगे/होंगी।
- इस कहानी में प्रयुक्त सम्प्रेषण-विधि की विशेषताओं को जान सकेंगे/सकेंगी।
- वर्तमान भारतीय जीवन-सन्दर्भ में इस कहानी की प्रासंगिकता को समझ सकेंगे/सकेंगी।

12.1 प्रस्तावना

यह एम. ए. हिन्दी (द्वितीय वर्ष) के कहानी से सम्बन्धित माड्यूल के पाठ्यक्रम 'प्रेमचन्द की कहानियाँ' के तीसरे खण्ड की तीसरी इकाई है। इसे पढ़कर आप प्रेमचन्द के रचनात्मक अवदान में निहित सभ्यता-समीक्षा के स्वरूप को समझ सकते हैं। किसी भी रचनाकार के सृजनात्मक अवदान की अपनी विशिष्ट योजना होती है, जो उसके समय और समाज के साथ उसकी रचनात्मकता की सतत अन्तर्क्रिया के आधार पर आकार पाती है। इस अन्तर्क्रिया के साथ विकसित होती विश्वदृष्टि, बाहर दिखाई देने वाले वस्तु-सत्य को कलानुभूति में बदलने वाली शक्ति है। रचनाकार की यही क्षमता इस कलानुभूति को सम्प्रेष्य अभिव्यक्ति में बदलने का आधार बनती है। प्रेमचन्द जैसे बड़े रचनाकार की ज्यादातर रचनाओं में यह समग्र रचना-प्रक्रिया अपनी गहन आत्मीयता, विलक्षण त्वरा और अनन्य सम्प्रेषणीयता के कारण आत्मसंभवा-सी लगती है। अतः व्याख्या या विश्लेषण के क्रम में समग्र रचना-प्रक्रिया की इस अन्विति का ध्यान रखना बहुत ज़रूरी है। रचनाकार का व्यक्तित्व कुछ गिने-चुने अत्यंत प्रसिद्ध या फिर आलोचकों द्वारा महत्वपूर्ण बताए गए हिस्सों के आधार पर नहीं बनता; वह उसकी तमाम रचनात्मक चेष्टाओं के

समेकित सायुज्य की फलश्रुति है। रचनाओं में पायी जानेवाली विविधरूपा प्रवृत्तियों का आकलन तो सम्भव है, पर उन्हीं प्रवृत्तियों के आधार पर उस रचनाकार की रचनाओं को अन्तिम रूप से वर्गीकृत कर देना; व्याख्या, विश्लेषण या समझ के स्तर पर कुछ अवाँछित व्यवधान भी पैदा करता है। प्रेमचन्द की रचनाओं, खासकर उनकी कहानियों में पायी जाने वाली विभिन्न विशेषताओं के अध्ययन और विश्लेषण के क्रम में यह बात साफ़ तौर पर देखी जा सकती है कि उनकी अधिसंख्य कहानियाँ भारतीय सभ्यता-विमर्श से सम्बद्ध हैं।

प्रेमचंद आधुनिक हिंदी-साहित्य के उन चुने हुए रचनाकारों में से एक हैं जिनकी रचनाओं को न केवल व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक स्वीकृति मिली है बल्कि रचनाकारों की भावी पीढ़ियों ने विधाओं की सीमा लाँघ कर, उनसे प्रेरणा पायी है। व्यावहारिक वस्तु चयन; ऐतिहासिक, तथ्यपरक एवं जनतांत्रिक चेतना; निर्भीक और निर्मम व्यंग्य धर्म; अकुंठ हास्य-बोध और आत्मीय भाषा-प्रवाह के विलक्षण संयोग का नाम प्रेमचंद है। इनका रचनात्मक व्यक्तित्व देखने में सहज, समझे जाने पर नितांत आत्मीय और प्रभाव में परम हितैषी है। यह महज संयोग नहीं कि हिन्दी-परम्परा में कबीर और तुलसी जैसे रचनाकारों के बाद वे निराला और प्रसाद के साथ समान रूप से प्रतिष्ठित रहे हैं। विचारों और व्यवहार में प्रगतिशीलता के अनन्य पक्षधर के रूप में उन्हें हमेशा याद किया जाता है। आधुनिक हिन्दी-कहानी और उपन्यास साहित्य के सम्पूर्ण इतिहास को प्रेमचंद के बिना आकार दे पाना नामुमकिन है।

प्रेमचन्द आधुनिक हिन्दी-साहित्य के प्रतिनिधि कथाकार हैं। इनका जन्म सन् 1880 ई0 में बनारस (उत्तरप्रदेश) के निकट लमही नामक गाँव में हुआ। इन्होंने मुख्यतः गद्य-विधाओं को अपने रचनाकर्म का आधार बनाया, इसमें कहानी, उपन्यास और निबंध प्रमुख हैं। आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य में प्रेमचन्द का आगमन देश-दुनिया की ऐतिहासिक परिस्थिति की स्वाभाविक फलश्रुति है। न केवल हिन्दी-साहित्य वरन अन्य अनेक भरतीय भाषाओं के साहित्य में आधुनिकता की प्रवृत्ति से प्रेरित राष्ट्रभाव का उदय हो चुका था। सन 1857 से 1900 ईसवी तक देश की जनता के सामने ब्रिटिश शासन की चरित्रगत विद्रूपता ही नहीं अपितु पारम्परिक भारतीय जीवन-दृष्टि में निहित विसंगतियाँ भी दिनानुदिन इस हद तक प्रकट होने लगी थीं कि इनका विरोध अवश्यंभावी हो गया था। प्रेमचन्द की रचनात्मकता इसी विरोध की हिन्दी ज़मीन पर पैदा हुई है। अतः इनकी रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना के निरन्तर विकास को देखना आवश्यक है। इन रचनाओं की विलक्षणता मात्र इस बात में नहीं कि इनमें राष्ट्रीय चेतना का विकास दर्ज है, बल्कि इनकी विलक्षणता का आधार यह है कि ये रचनाएँ राष्ट्रीय चेतना से बँधी होकर भी उस वृहत्तर भाव-भूमि का संस्पर्श लिए चलती हैं जिसे हम चेतनागत मानवीयता कहते हैं। इस अर्थ में प्रेमचन्द न केवल हिन्दी, न केवल भारत बल्कि विश्व-मानव के कथाकार हैं। जहाँ दलितों (वंचितों) के प्रति उनकी सहानुभूतिशील पक्षधरता और शोषकों (प्रभुत्व सम्पन्न लोगों) के प्रति उनका आक्रोश असंदिग्ध है।

इस इकाई तक पहुँचने से पहले, खण्ड एक में आपने प्रेमचन्द की कहानियों की सैद्धान्तिक आलोचना का परिचय पाया है। खण्ड दो तथा तीन में दी गई कतिपय अत्यंत प्रसिद्ध कहानियों के आधार पर प्रेमचन्द की कहानियों के व्यावहारिक पक्ष का परिचय भी आप पा चुके हैं। इस इकाई में हमलोग उनकी 'गुल्ली डण्डा' शीर्षक कहानी का विश्लेषण और मूल्यांकन करने का प्रयास करेंगे।

12.2 'गुल्ली डण्डा' कहानी का रचनात्मक परिवेश

इस माड्यूल की पूर्ववर्ती विविध इकाइयों में प्रेमचन्द की कहानियों से पाए गए परिचय के आधार पर आप जान चुके होंगे कि इनका समग्र रचनाकर्म, भारतीय राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन के उस विशिष्ट दौर की उपलब्धि है जिसमें स्वाधीनता की चेतना को उसकी समग्र अर्थ-व्याप्ति में अभूतपूर्व तीव्रता के साथ सम्प्रेषित करना न केवल हिन्दी बल्कि समस्त भारतीय भाषाओं के रचनाकारों का परम कर्तव्य था। यहाँ हम यह देखेंगे कि हिन्दी बोलने-समझने वाले आम लोगों तक इस चेतना को पहुँचाने के प्रसंग में प्रेमचन्द की कहानियों की भूमिका कितनी अहम है। उन्होंने साफ शब्दों में लिखा है कि– ''उपन्यास वे लोग पढ़ते हैं, जिनके पास पैसा है; और समय भी उन्हीं के पास रहता है, जिनके पास धन होता है। आख्यायिका साधारण जनता के लिए लिखी जाती है, जिसके पास न धन है न समय। यहाँ तो सरलता में सरसता पैदा कीजिए, यही कमाल है।''

प्रेमचंद ने बार-बार साहित्य की सोद्देश्यता पर बल दिया है। साहित्य की सोद्देश्यता से उनका तात्पर्य साहित्य को राष्ट्रीय स्वाधीनता की चेतना का वाहक बनाने से है। यह काम जिस रचनात्मक आत्मविश्वास, निष्ठा, आत्मीयता और पाठक की चेतना पर जिस अगाध भरोसे की माँग करता है, प्रेमचन्द की रचनाएँ उसका प्रकट प्रमाण हैं। कहना न होगा कि इन बातों के बावजूद यह राह आसान न थी। भारतीय समाज की जटिल संरचना के चलते इसे परिवर्तन के लिए राज़ी कर पाने लायक रचनाओं की प्रस्तुति बहुत कठिन थी। पारम्परिक मूल्यों के प्रति अतिरिक्त एवं अतर्क्य आग्रहों के साथ-साथ आधुनिकता का छद्म बोध, समाज के लिए और इसी के चलते रचनात्मकता के लिए भी गम्भीर चुनौतियाँ पैदा करते रहे हैं। प्रेमचन्द और उनके तमाम समकालीन रचनाकार इन चुनौतियों का सामना अपने-अपने तरीक़े से करते देखे जा सकते हैं। यहाँ हम यह देखेंगे कि 'गुल्ली-डंडा' शीर्षक कहानी में प्रेमचन्द ने इन चुनौतियों का सामना किस तरह किया है। यहाँ यह याद रखना चाहिए कि प्रेमचन्द की रचनाएँ, ख़ास कर उनकी कहानियाँ, हिन्दी-उर्दू के व्यापक पाठक-वर्ग को संवाद और विमर्श का जनतान्त्रिक माहौल, नज़रिया और विचारों की सही दिशा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से प्रेरित हैं। इस कहानी के रचना-विधान में जनतान्त्रिक चेतना का आधार बिल्कुल स्पष्ट है। पराधीन देश के बुरी तरह दबे-कुचले लोगों के मन में स्वाधीनता की नई चेतना का संचार इस युग की महत्वपूर्ण सांस्कृतिक चुनौतियों में से एक है। किन्तु सन 1930-1933 ई0 तक आते-आते (प्रस्तुत कहानी का रचनाकाल) इस चुनौती का एक विशिष्ट स्वरूप सामने आने लगा था। स्वाधीनता की चेतना का विकास मूलतः शिक्षा से जुड़ा था और शिक्षा की पूरी व्यवस्था अधिकांशतः अंग्रेजों अथवा उनकी जीवन-शैली में अंधभक्ति रखने वाले लोगों के हाथ थी। जाहिर है कि ऐसे में नई पीढ़ी की मानसिकता, उसकी योग्यता तथा सम्पूर्ण व्यक्तित्व-विकास के मोर्चे पर यह सोच बाधा पैदा कर रही थी। प्रेमचन्द की कहानियाँ जीवन के वास्तविक क्षेत्र में उतरकर स्वाधीनता की संभावनाओं की तलाश करती हैं। गुल्ली डंडा में की गई यह तलाश, उन्हें इस निष्कर्ष तक ले जाती है कि भारत के आम आदमी को अपने उस जीवन से जुड़े तमाम छोटे-छोटे प्रसंगों में कौन-सी जीवन-दृष्टि अपनानी चाहिए जिससे उसका जीवन सुखद और सार्थक हो सके; क्योंकि, उस आम आदमी के जीवन को सुखद और सार्थक बनाए बिना देश के विकास की कोई भी कवायद महज मजाक बन जाने के लिए अभिशप्त है। इस तरह हम देखते हैं कि क्रिकेट तथा अन्य अंग्रेजी खेलों की तुलना में गुल्ली-डंडा को ज्यादा महत्वपूर्ण बताना किसी व्यक्ति या लेखक की व्यक्तिगत धारणा मात्र न होकर, सांस्कृतिक राजनीति का एक सुचिन्तित दृष्टिकोण है, जिसके गम्भीरतर राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक निहितार्थ हैं।

हम सभी जानते हैं कि खेल, जीवन-भाषा की बेहद महत्वपूर्ण क्रियाओं में से एक है। ये खेल हमारे व्यक्तित्व-निर्माण में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। जीवन के अनेक पक्षों की तरह किसी प्रदत्त देश-काल और समाज के लिए खेलों की भी अपनी एक सहज परम्परा होती है। अतः विकास अथवा तथाकथित आधुनिकता के नाम पर अपनी ज़मीन और परिवेश से जुड़े इस या इस जैसे अन्य सांस्कृतिक तत्वों की उपेक्षा, समाज को निरन्तर कमज़ोर करती चली आयी है। आज़ादी के इतने वर्षों बाद क्रिकेट के नाम पर भारत में ही नहीं अन्य अनेकानेक देशों में बाज़ार द्वारा प्रायोजित जो जुनून फैलाया जा रहा है, उसका आधार निस्सन्देह वही हीनता-बोध है; जिसके तहत हम अपनी हर एक चीज़ को सामान्यतः पश्चिम और विशेषतः इंग्लैंड से हीन मान लेते हैं। प्रेमचन्द इस भावना पर सीधी चोट करते हैं। उनके अनुसार एक ऐसे देश में जहाँ शिक्षा सामान्यतः मुत दी जाती रही थी, स्कूलों से जुड़े आनुशंगिक व्यय (खेल-कूद आदि) के लिए दो-तीन रुपए वार्षिक फीस लेना नितांत अनुचित है। वे कहते हैं कि मँहगे उपस्करों की ज़रूरत वाले खेलों की जगह ऐसे खेलों को व्यापक तौर पर अपनाना ज्यादा मुफ़ीद है, जिनमें खर्च अपेक्षाकृत न के बराबर हो। कहने की आवश्यकता नहीं कि गुल्ली-डंडा, कथाकार प्रेमचन्द के लिए उनकी और उनके देशवासियों की गर्वीली ग़रीबी! आत्मसम्मान तथा आर्थिक व्यावहारिकता के साथ सांस्कृतिक विरासत के प्रति लगाव का प्रमाण है। जबकि तथाकथित आधुनिकता के नाम पर पश्चिमीकरण की अन्धी दौड़ में शामिल होकर अपनों के बीच अपनी विशिष्टता देखने और दिखलाने में मशगूल भारतीयों के प्रति यह कहानी एक कड़ी फटकार भी है और चेतावनी भी।

12.3 'गुल्ली-डण्डा' में अभिव्यक्त सभ्यता-समीक्षा का स्वरूप

हंस पत्रिका के फरवरी 1933 के अंक में प्रकाशित इस कहानी का शीर्षक और इसका एक त्वरित पाठ हमारे मन पर जो प्रभाव छोड़ता है, वह एक पढ़े-लिखे व्यक्ति के उस इलाके में संयोगवश पहुँच जाने से, जहाँ वह पला-बढ़ा था, पैदा हुए नास्टेल्जिक इफेक्ट का आधार लेकर, पाठक को उसके जीवन के किन्हीं विस्मृत प्रियतर इलाक़े में ले जाने वाली कहानी लगती है, पर थोड़ा ही रुकने से यह बात साफ हो जाती है कि यहाँ कहानीकार का उद्देश्य पाठक को उसके जीवन के किसी पुराने प्रियलोक में वापस ले जाना मात्र नहीं है। कहानी अपनी पहली पंक्ति से ही समकालीन जीवन के दो परस्पर भिन्न दृष्टिकोणों को न केवल सामने लाती है बल्कि, एक की अपेक्षा दूसरे को ठोस तर्क्रिक आधारों पर बेहतर ठहराती है। एक ओर 'अंग्रेजीदाँ दोस्तों' द्वारा चुनी गयी जीवन-विधि है, इनके द्वारा अपनाए गए खेलों में लॉन, कोर्ट, नेट, रैकेट, थापी (बैट) आदि मँहगी चीजों की आवश्यकता है; तो दूसरी ओर कथा-नायक द्वारा चुनी गयी जीवन-विधि है; गुल्ली डंडा है; जिसे लेखक, नैरेटर के हवाले से 'सब खेलों का राजा' कहता है। प्रेमचन्द लिखते हैं- ''विलायती खेलों में सबसे बड़ा ऐब है कि उनके समान महँगे होते हैं। जब तक कम-से-कम एक सैकड़ा खर्च न कीजिए, खिलाड़ियों में शुमार ही नहीं हो सकते। यह गुल्ली-डण्डा है कि बिना हर्र-फिटकरी के चोखा रंग देता है; पर हम अंग्रेजी चीजों के पीछे ऐसे दीवाने हो रहे हैं कि अपनी सभी चीजों से अरूचि हो गयी है।'' यहाँ यह पूछना असंगत न होगा कि आखिर चीन, जापान, कोरिया या फिर अमेरिका में क्रिकेट को लेकर वह जुनून क्यों पैदा नहीं हुआ जो समूचे भारतीय उपमहाद्वीप की सामान्य पहचान बन चुका है। सामान्य समाजिक व्यवहार में व्याप्त इस असंगति को सामने लाकर वे चुप नहीं हो जाते, व्यवस्था पर भी कड़ी टिप्पणी करते हैं। कहानी के पहले ही परिच्छेद में आप निम्नलिखित पंक्तियों को देख सकते हैं -''हमारे स्कूलों में हरेक लड़के से तीन-चार रुपये सालाना केवल खेलने की फीस ली जाती है। किसी को यह नहीं सूझता कि भारतीय खेल खेलायें; जो बिना दाम कौड़ी के खेले जाते हैं। अंग्रेजी खेल उनके लिए है, जिनके

पास धन है। गरीब लड़कों के सिर क्यों यह व्यसन मढ़ते हो।'' इसी तक्र-प्रणाली को और आगे बढ़ाते हुए लेखक ने उस अयाचित धारणा का दो टूक शब्दों में विरोध किया है जिसमें देशी खेलों को बाहरी खेलों की तुलना में ख़तरनाक बताया जाता है। उनका कहना है–''ठीक है, गुल्ली से आँख फूट जाने का भय रहता है। तो क्या क्रिकेट से सिर फूट जाने, तिल्ली फट जाने, टाँग टूट जाने का भय नहीं रहता ? अगर हमारे माथे में गुल्ली का दाग आज तक बना हुआ है, तो हमारे कई दोस्त ऐसे भी हैं, जो थापी (बैट) को बैसाखी में बदल बैठे।'' कहानी की शुरुआत में ही अपनी सांस्कृतिक राजनीति को पूरे जनतांत्रिक खुलेपन के साथ निर्भ्रांत अभिव्यक्ति देते हुए वे लिखते हैं–''ख़ैर, यह अपनी-अपनी रूचि है। मुझे गुल्ली ही सब खेलों से अच्छी लगती है और बचपन की मीठी स्मृतियों में गुल्ली ही सबसे मीठी है।'' इसी क्रम में इस खेल के कुछ ऐसे पहलू सामने आते हैं जिन पर ग़ौर किए बग़ैर कहानीकार के वास्तविक मंतव्य का पता पाना मुश्किल है। खेल के लिए जरूरी सामग्री जैसे गुल्ली और डंडे आदि को खुद से बनाने से लेकर उत्साह और लगन, खिलाड़ियों का जमावड़ा, पदने-पदाने से लेकर लड़ाई-झगड़े तक सर्वत्र प्रकट होने वाली उस स्वभावगत सरलता को प्रेमचन्द बखूबी याद रखते हैं; जहाँ समाज में घर कर गए भेद-भाव के लिए कोई जगह नहीं, अमीर तबकों की पहचान बन चुके बेलिहाज़ प्रदर्शन और अनर्गल अभिमान की कोई गुंजाइश नहीं। यहाँ कहानीकार ने इस खेल के साथ जुड़ी लगभग हर बात को आत्मीय परख के साथ प्रस्तुत किया है, जिसमें पिता के क्रोध और माँ की चिन्ता की उपेक्षा तक शामिल है। कहानी के इस खण्ड से गुजरते हुए पाठक को प्रेमचन्द पूरी तरह से गुल्ली डंडे की याद में ही संलिप्त कर देते हैं और ठीक इसी मोड़ पर बिना कोई देरी किये, वे अपने उस दोस्त को याद करते हैं जिसका नाम गया है। चार पाँच पंक्तियों में प्रेमचन्द ने उस तेज तर्रार लड़के का इतना सुन्दर चित्र खींचा है, जिसे भूल पाना असंभव है–''दुबला, लम्बा, बंदरों की सी लम्बी-लम्बी पतली-पतली उंगलियाँ, बन्दरों की-सी ही चपलता, वही झल्लाहट, गुल्ली कैसी हो, उस पर इस तरह लपकता था; जैसे छिपकली कीड़ों पर लपकती है।'' नितांत साधारण ढ़ंग से गया की बात करते-करते वे कब खेल के मैदान में पहुँच जाते हैं, पता ही नहीं लगता। कहानी की पंक्तियों में गुल्ली डंडे के खेल को जीवन्त बनाते हुए लेखक की मर्म-भेदी निगाह मानव-स्वभाव में निहित एक विचित्र सत्य का संकेत करती है कि जिसमें अपने साथ के लोगों से अपना प्राप्य वसूल करने में हम समय को भूलकर, बिना थके, लगे रह सकते हैं; पर खुद जब देने की बारी आती है तो एक मिनट भी भारी पड़ता है। बचपन के उस विशिष्ट अवसर को याद करते हुए कथावाचक घटना की ऐसी सरल अभिव्यक्ति करता है जिसकी सत्यता को किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। दो ही लोग खेल रहे हैं और गया जीत गया है। दाँव देने की बारी कथावाचक की है। थोड़ी देर तो वह दाँव देता है पर कुछ ही समय बाद स्वाभाविक रूप से आना-कानी करने लगता है। प्रेमचन्द लिखते हैं–''मैंने गला छुड़ाने के लिए सब चालें चलीं, जो ऐसे अवसर पर शास्त्र विहित न होने पर भी क्षम्य हैं, लेकिन गया अपना दाँव लिये बगैर मेरा पिण्ड न छोड़ता था।'' दाँव देने से बचने के लिए कथावाचक कल खिलाये हुए अमरूद का हवाला देता है। इस प्रसंग में प्रेमचन्द ने संवाद शैली का प्रयोग अद्वितीय कैशल के साथ किया है। इससे कथा-प्रसंग में नाटकीय गत्यात्मकता और जीवन्तता दिखाई देती है। दो बच्चों के खेल से उपजे इस झगड़े में प्रेमचन्द वह देखते और दिखाते हैं जो जीवन के कटुतम सत्यों में से एक है। यह बात और है कि केवल बच्चे ही अपनी बात-चीत और व्यवहार में इस सत्य को उसकी पूरी कटुता के साथ व्यक्त करने का साहस रखते हैं। पंक्तियाँ देखें–''मैं समझता था, न्याय मेरी ओर है। आखिर मैंने किसी स्वार्थ से ही उसे अमरूद खिलाया होगा। कौन निःस्वार्थ किसी के साथ सलूक करता है। भिक्षा तक तो स्वार्थ के लिए ही देते हैं। .... रिश्वत देकर तो लोग खून तक पचा जाते हैं। यह मेरा अमरूद

यों ही हजम कर जाएगा।.........यह सरासर अन्याय था।'' बच्चों की बात-चीत में व्यक्त समझदारी और तर्क-पद्धति को देखकर कोई बुद्धिमान व्यक्ति सहज ही यह कहने की भूल कर सकता है कि कथावाचक को गया के कहने के अनुसार दाँव देना चाहिए था लेकिन यहाँ इस बात को देखे बग़ैर नहीं रहा जा सकता कि अपने को बड़ा और समझदार मानने वाले हम सभी जीवन के वास्तविक क्रिया-व्यापारों में आज भी लगभग वही पद्धति अपनाते हैं जो उस समय इस कहानी के वाचक ने अपनायी है। स्वार्थ के संसर्ग से न्याय और अन्याय दोनों सर के बल खड़े नज़र आते हैं। जब बात-चीत से बात हल न हुई तो हाथ-पाँव और डंडा चलना ही था। कहानीकार की सम्प्रेषण-सिद्धि इस बात में है कि वाच्यार्थ और निहितार्थ परस्पर दूरी के बावजूद न केवल पूरक बल्कि अन्योन्याश्रित प्रतिस्थानापन्न की भूमिका भी निभाते हैं। लेखक नितांत सहजता से एक ऐसे गम्भीर सामाजिक सत्य को सामने लाता है जिसे दरकिनार करके भारतीय समाज को समझ पाना नामुमकिन है। पंक्तियाँ देखें–''मैं थानेदार का लड़का एक नीच जात के लौंडे के हाथों पिट गया, यह मुझे उस समय भी अपमानजनक मालूम हुआ; लेकिन घर में किसी से शिकायत न की।''

12.4 'गुल्ली-डण्डा' में व्यक्त जीवन-मूल्य

''मनुष्य-जाति के लिए मनुष्य ही सबसे विकट पहेली है। वह खुद अपनी समझ में नहीं आता। किसी न किसी रूप में वह अपनी ही आलोचना किया करता है– अपने ही मनोरहस्य खोला करता है। मानव-संस्कृति का विकास ही इसलिए हुआ है कि मनुष्य अपने को समझे।'' प्रेमचन्द का यह कथन उनकी रचनात्मक चेतना की मूल प्रवृत्ति को स्पष्ट करता है। रचना का उद्देश्य नयी जीवन-विधि की तलाश है। जीवन-विधि का नयापन, नयी मूल्य-व्यवस्था की माँग करता है। इस कहानी में रचनाकार ने जिन परिवर्तनों की प्रस्तावना की है उन्हें देखने से कहानी की समझ विकसित करने में सहायता मिलती है। कहानी के दूसरे खण्ड में हम घटना-क्रम के उस मोड़ पर पहुँचते हैं जहाँ से कहानी अपने मूल मंतव्य को अपेक्षाकृत अधिक खुले तौर पर सामने रखती है। पिता के तबादले के चलते कथावाचक को बचपन की वह जगह छोड़नी पड़ती है। नई जगह जाने की खुशी, हमजोलियों से बिछुड़ने के ग़म पर भारी पड़ती है। बालक अपने साथियों पर धौंस जमाने के लिए अपने अनदेखे नये ठिकाने के बारे में बहुत सी आधारहीन कल्पनाएँ करता है। वहाँ गए बग़ैर साथियों के बीच वह उस नयी जगह को कल्पना के बल से पूरा का पूरा रच डालता है। वास्तविक हानि की भरपाई के लिए कल्पित अतिरिक्त लाभ की उत्कट आशा का होना लाज़िमी है। प्रेमचन्द अपने चिरपरिचित अन्दाज़ में जीवन के सच का एक अन्य आसंग पाठकों के सामने लाते हैं। बच्चे का सच यह है कि वह अपने साथियों और परिचित परिवेश से बिछड़ रहा है। वह मजबूर है और यह मजबूरी ही उसका सच है। इस मजबूरी भरे सच का सामना करने के लिए वह कल्पना-रचित चामत्कारिक सत्य के आभास का सहारा ले रहा है। हमारा (बड़ों का) सच देश की गुलामी और बदहाली है। हम अंग्रेजी रहन-सहन और खेल-कूद, आचार-विचार को अपना कर जिस मायालोक को रच रहे हैं, प्रेमचन्द उसी मायालोक का सच सामने ला देते हैं। बच्चे झूठ को सच, हम सच को झूठ बनाने के लिए कल्पना का इस्तेमाल करते रहे हैं। ''बच्चों में मिथ्या को सत्य बना लेने की वह शक्ति है, जिसे हम, जो सत्य को मिथ्या बना लेते हैं, क्या समझेंगे।'' एक साधारण समझे जाने वाले (गुल्ली डंडा) खेल के बहाने प्रेमचन्द ने मानव-व्यक्तित्व के व्यक्तिगत और सामाजिक अनेक पहलुओं के साथ भारतीय; खास तौर पर हिन्दी समाज के उस ऐतिहासिक संदर्भ को सामने लाया है, जो राष्ट्रीय चेतना के विकास की दृष्टि से बेहद संवेदनशील और महत्वपूर्ण है। इस कहानी में व्यक्त की गई धारणाएँ एवं भावनाएँ न केवल समाज के लिए बल्कि उस समय

और आज के समय और समाज के लिए भी सार्थक विकास के अनेक सूत्रों को संजोये है।

12.5 'गुल्ली-डंडा' कहानी में प्रयुक्त सम्प्रेषण-विधि की विशेषताएँ

'कहानी-कला' शीर्षक प्रसिद्ध निबन्ध में कहानियों की विशेषताओं की चर्चा करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा है–''कहानियों के प्राबल्य का मुख्य कारण आजकल का जीवन-संग्राम और समयाभाव है। अब वह ज़माना नहीं रहा कि हम 'बोस्ताने खयाल' लेकर बैठ जायँ और सारे दिन उसी के कुंजों में विचरते रहें। अब तो हम जीवन-संग्राम में इतने तन्मय हो गये हैं कि हमें मनोरंजन के लिए समय ही नहीं मिलता। अगर कुछ मनोरंजन स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य न होता, और हम विक्षिप्त हुए बिना नित्य अठारह घण्टे काम कर सकते तो शायद हम मनोरंजन का नाम भी न लेते। लेकिन प्रकृति ने हमें विवश कर दिया है; हम चाहते हैं कि थोड़े से थोड़े समय में अधिक मनोरंजन हो जाय, इसी लिए सिनेमा-गृहों की संख्या दिन-दिन बढ़ती जाती है। जिस उपन्यास को पढ़ने में महीनों लगते, उसका आनंद हम दो घंटों में उठा लेते हैं। कहानी के लिए पंद्रह-बीस मिनट ही काफ़ी हैं। अतएव हम कहानी ऐसी चाहते हैं कि वह थोड़े से थोड़े शब्दों में कही जाय, उसमें एक वाक्य, एक शब्द भी अनावश्यक न आने पाए। उसका पहला ही वाक्य मन को आकर्षित कर ले और अन्त तक उसे मुग्ध किए रहे, और उनमें कुछ चटपटापन हो, कुछ ताज़गी हो, और इसके साथ ही कुछ तत्त्व भी हो। तत्त्वहीन कहानी से मनोरंजन भले हो जाए, मानसिक तृप्ति नहीं होती। यह सच है कि हम कहानियों में उपदेश नहीं चाहते, लेकिन विचारों को उत्तेजित करने के लिए, मन के सुन्दर भावों को जागृत करने के लिए, कुछ न कुछ अवश्य चाहते हैं। वही कहानी सफल होती है, जिसमें इन दोनों में से-मनोरंजन और मानसिक तृप्ति में से, एक अवश्य उपलब्ध हो।'' 'गुल्ली-डण्डा' प्रेमचन्द की इन पंक्तियों में व्यक्त दोनों अपेक्षाओं की कसौटी पर खरी उतरती है।

कथा-क्रम में बीस वर्षों के अन्तराल के बाद कथा-वाचक इन्जीनिअरिंग पास करता है और काम-काज के सिलसिले में संयोगवश उसी जगह जा पहुँचता है जहाँ उसका बचपन बीता था। उस जगह को देखकर उसका मन सहज रूप से बचपन की स्मृतियों में खो जाता है। प्रेमचन्द लिखते हैं कि नाम के सिवा वहाँ और कुछ परिचित न था। परिवर्तन के चक्र ने उस स्थान को भी पूरा का पूरा नया स्वरूप दे दिया था। बावज़ूद इसके वाचक का सहज राग-बंध उस बदले हुए स्थान को भी आत्मीयता की ऐसी सुगंध से भर रहा था, जो सुन्दर से सुन्दर किसी और स्थान पर नहीं पायी जा सकती। आत्मीयता की यही सुगंध उसके मन में दीर्घकाल से संचित उस स्थान के आद्यबिम्ब (आर्केटाइप) को सक्रिय कर देती है। वह वर्तमान को भूलकर अतीत के उसी लोक को भाव के स्तर पर न केवल जीवन्त करता है बल्कि जीता भी है। यह कथाकार प्रेमचन्द की विलक्षण प्रयोगधर्मिता है, जो अपनी ऊपरी सहजता में अर्थ के न जाने कितने स्तरों की संभावनाओं को साथ लिए चलती है। इस लोक में कथावाचक आराम से सभ्यता के उन आवरणों को उतार फेंकता है जिसे अन्यथा ओढ़े रहना ना केवल उसका शौक़ है, बल्कि मजबूरी भी; और इस लोक में प्रवेश करके क्या वह सब कुछ कर पाता है जो वह करना चाहता है ? चाहने के बाद भी आवरण उसका पिण्ड नहीं छोड़ते हैं। प्रेमचन्द इस मनोदशा को उसके व्यवहार में अचूक कौशल से अंकित करते हैं–''मैं दूर ही से पहचान गया। उसकी ओर लपकना चाहता था कि उसके गले लिपट जाऊँ; पर कुछ सोचकर रह गया।'' जाहिर है कि बचपन की स्मृतियाँ जिस सहज वेग और तत्परता से उसके मन पर हावी होना चाहती हैं, सभ्यता के आवरण वहाँ बाधक बनकर खड़े हैं। नया परिचय, पुरानी आत्मीयता पर

भारी है। बचपन के दो मित्रों का इतने वर्षों बाद फिर से मिलना देखने लायक ही नहीं समझने लायक भी है। एक के द्वारा पूछा गया प्रश्न, झुक कर किए गए सलाम और मालिक सम्बोधन के साथ उत्तर पाता है। पढ़ने वाले को लगता है कि यह सब ठीक है। एक अर्थ में यह ठीक है भी, क्योंकि समाज में व्याप्त विसंगतियाँ इतनी गहरी और गाढ़ी हो चुकी हैं कि सामान्य व्यवहारों में यहाँ-वहाँ प्रकट होने वाली विडंबनाएँ या तो हमें दिखाई नहीं देतीं या फिर गलत को सही मानना ही हमारी फितरत बन गई है। परिचय पूछने पर गया कहता है– "डिप्टी साहब का साईस हूँ"। अन्य दोस्तों की ख़बर पूछने के बाद जब कथावाचक, जिले के इंजीनियर के रूप में अपना परिचय देता है तो जवाब में गया की सहज-सी टिप्पणी में अर्थ की अनेक अनुगूँजें हैं–''सरकार तो पहले ही बड़े ज़हीन थे''। कथाकार एक ऐसी पृष्ठभूमि रच आया है जहाँ इन दोनों को साथ-साथ खेलते-कूदते और जूझते दिखया गया है। वह पृष्ठभूमि इस बात की गवाह है कि गया कथावाचक से किसी स्तर पर (ज़हनियत या शारीरिक क्षमता में) कम नहीं है, फिर उसके द्वारा यह कहा जाना कि ''सरकार तो पहले ही बहुत ज़हीन थे'' एक ओर उस विवशता का निर्विरोध स्वीकार है, जो एक ही समाज के किसी खास स्तर से जुड़े व्यक्ति को बराबर या कम योग्यता के बावजूद जिले का इंजीनियर बनाती है, तो दूसरी ओर बराबर या अधिक योग्यता रखने वाले अपेक्षया निम्न समझे जाने वाले स्तर से आए व्यक्ति को डाकिया या साईस बना कर छोड़ती है। यही उस विडम्बना-बोध से उपजी क्षमाशील दया है जो सामने वाले को बिना किसी आक्रोश या घृणा के उसकी सही औक़ात बता देती है। यह देखने लायक है कि 'गया' प्रेमचन्द की नज़र में उस व्यक्ति से बेहतर मनुष्य है, जिसे अन्यथा कथानायक मान लेना हमारी आदत में शामिल है। वह गया से एक बार फिर गुल्ली-डंडा खेलने का प्रस्ताव रखता है और इस खेल में गया लगातार उसे जीतने का अवसर देता है। यहाँ तक की उसे एक हद तक अपने खेल के बेहतर होने और गया के खेलना भूल जाने के मुग़ालते में मुब्तिला होने का अवसर देता है। पर प्रेमचन्द की खुसूसियत इस बात में है कि वे मामले को पूरी बारीकी से उसकी अंतिम तह तक खोलते हैं। यही कारण है कि गया अगले दिन के लिए उसे खेल खेलने का नहीं देखने का न्योता देता है। बराबर वालों में जो खेल दूसरे दिन खेला जाता है, उसे देखकर इन्जीनियर साहब की बुद्धि पर पड़े सारे पर्दे हट जाते हैं। उन्हें समझ में आता है–''अब मुझे मालूम हुआ कि कल गया ने मेरे साथ खेला नहीं; केवल खेलने का बहाना किया। उसने मुझे दया का पात्र समझा, मैंने धांधली की, बेईमानियाँ की; पर उसे जरा भी क्रोध न आया। इसलिए कि वह खेल न रहा था, मुझे खेला रहा था, मेरा मान रख रहा था। वह मुझे पदाकर मेरा कचूमर नहीं निकालना चाहता था। मैं अब अफसर हूँ। यह अफसरी मेरे और उसके बीच में दीवार बन गयी है। अब मैं उसका लिहाज़ पा सकता हूँ, अदब पा सकता हूँ, साहचर्य नहीं पा सकता।''

यह कहानी प्रेमचन्द के रचनाकाल के उत्तरवर्ती दौर का प्रतिनिधित्व करती है। इस कहानी में प्रेमचन्द की कहानी-कला की तमाम खूबियाँ आरम्भ से अंत तक बहुत सफलतापूर्वक उस सार्थकता का सृजन करती हैं, जो किसी भी रचनाकार के लिए एक सपने की तरह है। प्रेमचन्द की कथा-भाषा अपने सहज प्रवाह के कारण लेखक कथ्य और पाठक के बीच के अंतराल को चुटकियों में मिटाती चलती है। कहना न होगा कि कथास्वाद का ऐसा अनुभव हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं में ही नहीं बल्कि विश्व-साहित्य में भी कम ही पाया जाता है।

उपन्यास को विधा के रूप में उसकी प्रबन्धात्मक प्रकृति और संभावना के कारण हिन्दी में ही नहीं अन्य भारतीय भाषाओं और विश्व-साहित्य में भी कहानी की तुलना में वरीयता देने की परंपरा-सी बन गई है। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि कहानी अपने विशिष्ट

विधात्मक स्वरूप के कारण आख्यान और इतिहास के संयोग की जिस संभावना को जन्म देती है वह उपन्यास द्वारा सृजित इसी संभावना के स्वरूप से प्रकृति में भिन्न है। अतः जो काम कहानी अपनी लघुता अथवा युग सत्य की खण्डित अभिव्यक्ति में कर दिखाती है वह काम उपन्यास अपनी विशाल काया और संपूर्णता के तथाकथित सम्भार के बावजूद अक्सर नहीं कर पाता है। बात आकार की न होकर प्रकार की होती है; और यह शर्त दोनों विधाओं की रचनाओं पर बराबर ढंग से लागू है। अतः कहानियों को पढ़ने-समझने की चेष्टा को इस हीन-भाव से दूर रखना अनिवार्य है, अन्यथा अध्ययन को अपेक्षित दिशा और गहनता दे पाना संभव नहीं। प्रेमचंद भरतीय समाज की लगभग हर छोटी-बड़ी अच्छाई और बुराई को परखते हुए सभ्यता-समीक्षा में तल्लीन दिखाई देते हैं। ऐसा करते हुए वे तय करते हैं कि कौन-सी चीज आज उपयोगी है और कौन-सी अनुपयोगी। इसी तरह बाहर से आ रही चीजों के बारे में भी उनकी आलोचनात्मक छान-बीन का मूल आधार नए भारत के सन्दर्भ में उस नई चीज को उपयोगिता की कसौटी पर कसना ही है। यहाँ क्रिकेट और अन्य अंग्रेजी खेलों और गुल्ली डंडे को तराजू पर तोला जा रहा है।

सोद्देश्यता को खुद प्रेमचन्द ने ही नहीं उनके अधिसंख्य आलोचकों ने भी उनके रचनाकर्म का आधार माना है। अतः प्रेमचन्द की रचनाओं के प्रसंग में इस सोद्देश्यता की प्रकृति की पहचान बहुत ज़रूरी है। साहित्य कि प्रयोजनों को सामान्यतः दो वर्गों में बांटा जा सकता है जिनमें से एक मनोरंजन का पक्ष है और दूसरा वैचारिक-व्यावहारिक परिवर्तनों की समयानुकूल (इतिहास सम्मत) प्रस्तावना के आधार पर सामाजिक उन्नयन का। प्रेमचन्द ने जहाँ मनोरंजन-पक्ष से आगे जाकर सामाजिक उन्नयन की ज़ोरदार वक़ालत की है, वहाँ भी वे मनोरंजन-पक्ष की उपेक्षा बिल्कुल नहीं करते। उनकी वाक्य-रचनाओं में इस बात के अनेक प्रमाण हैं। सामान्यतः साहित्य और विशेषतः कथात्मक विधाओं में मनोरंजन की उपेक्षा करना साहित्य और साहित्यकार के लिए आत्महत्या के प्रयास जैसा है। कहना न होगा कि प्रेमचन्द इस बात से बखूबी वाक़िफ थे। अतः उन्होंने अपनी कहानियों में देश से जुड़ी तमाम समस्याओं (आज़ादी से लेकर सामाजिक परिवर्तन) को उनकी पूरी गम्भीरता के साथ प्रस्तुत करते हुए भी कभी मनोरंजन तत्व की उपेक्षा नहीं की। यही कारण है कि उनकी रचनाओं का व्यक्तित्व ऐसा बन पड़ा जिसने उन्हें हिंदी साहित्य में दीर्घकालिक और व्यापक प्रसिद्धि दी है।

भारतीय साहित्य- शास्त्र में जिसे 'रमणीयार्थ' कहा जाता है, वह रचना में व्यक्त गंभीरतर जीवन-दृष्टि की ओर पाठक को आकर्षित या उन्मुख करने के साथ सम्प्रेषित होने वाला अर्थ है। उसे सस्तेपन से समीकृत कर त्याज्य मान लेना सर्वथा अनुचित है। भारतीय साहित्य- शास्त्र द्वारा प्रदत्त यह निर्णय सुविचारित है कि वास्तव में पाठक या श्रोता को शामिल किए बिना न तो अर्थ-बोध की संभावना है और न आस्वाद की। आचार्य शुक्ल ने साहित्य के लोकरंजक और लोकरक्षक स्वरुप को सामने रखकर आलोचना का आधार विकसित करते हुए लोकरक्षक पक्ष को निभ्रान्त वरीयता दी है। प्रेमचंद के निबंधों और भाषणों में भी यह वैचारिक आग्रह साफ-साफ दिखाई देता है और गहन अर्थों में यह उनकी रचनात्मकता का महत्वपूर्ण आधार है भी। किंतु लोक-रंजकता की उपेक्षा, उत्तम से उत्तम लोक-रक्षक साहित्य की सामाजिक स्वीकृति में एक बहुत बड़ी बाधा है। यहाँ तक कि लोकरंजक हुए बिना लोक-रक्षण की उम्मीद, साहित्य या कला के क्षेत्र में महज उम्मीद के सिवा और कुछ नहीं। प्रेमचंद का सम्पूर्ण साहित्य नए भारत के निर्माण की चिन्ता तथा स्वाधीनता के सर्वांगीण विकास की भावना से प्रेरित है। इसके लिए वे हिन्दी-क्षेत्र के समाज की सोच को बदलना चाहते हैं और तर्कसम्मत आधारों पर परंपरागत विषमताओं को मिटाने और नवीन जीवन-विधि के विकास की चेष्टा में संलग्न हैं। सवाल

यह है कि क्या पाठकों द्वारा रचना की व्यापक स्वीकृति के बगैर इस उद्देश्य को पाना संभव है ? कहना न होगा कि प्रेमचंद जैसा युगान्तरकारी रचनाकार कला-क्षेत्र के इस मौलिक प्रश्न से अनभिग्य न था। प्रस्तुत कहानी में निहित हास्य एवं व्यंग्य-बोध, इसका पात्र चयन, कहानी के अंतर्गत रचित परिस्थितिगत अन्विति और इसकी भाषा-चेतना से हर कदम पर इस बात की गवाही मिलती है कि प्रेमचंद न केवल अपनी रचना के निहितार्थ के प्रति सचेत हैं, बल्कि वे बतौर रचनाकार, रचना के संप्रेषण से जुड़े मोर्चों के बारे में भी उतने ही सजग और संवेदनशील हैं।

प्रेमचन्द के द्वारा सृजनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति की दृष्टि से किया गया विधा-चयन भी उनकी विलक्षणता का परिचायक है। जिस हिन्दी-क्षेत्र में रहने वालों को प्रेमचन्द की रचनाऐं सीधे संबोधित कर रही थीं, वहाँ सामान्य जनता अधिकांशतः निरक्षर ही थी और अबतक उसकी सामाजिक चेतना की निर्मिति मुख्यतः श्रुत परंपरा के आधार पर ही होती आई थी। जाहिर है कि सामाजिक सोच को बदलने के लिए शिक्षा के क्षेत्र में अपेक्षित परिवर्तनों की बाट जोहने का वक़्त न था। अतः प्रेमचन्द ने ऐसी विधा का चयन किया जो व्यापक हिन्दी जन-समूह को न केवल अपेक्षित दिशाओं की सूचना देती है बल्कि वैचारिक-व्यावहारिक स्तर पर इन नवीन मूल्य-व्यवस्था के स्वाभाविक अभिग्रहण का वह सहज परिवेश भी तैयार करती है, जिसके बिना कला या साहित्य के क्षेत्र में कोई भी प्रयास निष्फल होने को अभिशप्त है। प्रेमचन्द नितांत सरल शब्दों में अपने पाठक-वर्ग को अपने पास बुलाकर समस्या से परिचित कराते हैं; समाज में प्रचलित मिथ्या धारणाओं, असंगत विचारों और व्यावहारिक जड़ताओं का सतर्क विरोध करते हैं और नवीन मूल्यों तथा दिशाओं के संधान के साथ उनके अपनाए जाने की व्यक्तिगत और सामाजिक मनोभूमि का निर्माण करते हैं। यह महज संयोग नहीं कि प्रेमचन्द की साधारण समझी जाने वाली अल्पचर्चित कहानियाँ भी ऐतिहासिक सोद्देश्यता, संप्रेषणीयता और प्रभावकता के मानकों पर विश्व के किसी भी बड़े रचनाकार की रचना को टक्कर देने की क्षमता रखती हैं।

हिन्दी आलोचना में उपन्यासकार प्रेमचन्द को कहानीकार प्रेमचन्द की तुलना में हमेशा वरीयता दी जाती रही है। इसके अनेक कारण हैं। हिन्दी आलोचना का मुख्यतः प्रबन्धात्मक शिल्प के प्रति झुकाव, इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहा है। उपन्यास को महाकाव्य का आधुनिक स्थानापन्न मानने के चलते आलोचकों ने जीवन की वृहत्तर व्यवस्था के स्वरूप के समग्र चित्रण में समर्थ माने जाने वाले उपन्यास को श्रेष्ठ माना है। इसके चलते कहानियों पर कम ध्यान दिया गया है। यह संयोग मात्र नहीं कि प्रेमचन्द जैसे यशस्वी कथाकार के प्रसंग में भी हमारे आलोचकीय चिन्तन का आधार गिनी-चुनी कहानियों तक सिमटा रहा है। प्रसंगवश अन्य कम महत्वपूर्ण समझी जाने वाली कहानियों की चर्चा करने वाले आलोचक को अतिरिक्त उत्साही करार दिए जाने का अन्देशा बना ही रहता है। ऐसा इसलिए कि कहानी-विधा के बारे में हिन्दी आलोचना का दृष्टिकोण कुछ बहुत अच्छा नहीं रहा है। आलोचकों ने कहानियों पर ध्यान दिया अवश्य है पर अपवाद स्वरूप ही। उपन्यास की तुलना में इसे निश्चय ही उपेक्षा मिलती रही है। वास्तव में ये दोनों विधाऐं अपनी प्रकृति और स्वभाव में बहुत भिन्न-भिन्न हैं। दोनों का कार्य-क्षेत्र समान हैं और कार्य-विधियाँ सर्वथा भिन्न हैं। उदाहरण के लिए उपन्यास यदि समष्टि-बोध को केन्द्रीय महत्व देता है तो कहानियाँ व्यष्टि-चिन्तन-क्रम का आग्रह लिए चलती हैं। कहानी का उद्देश्य सीमित समय में पाठक के ध्यान को विषय के किसी एक या दो एक पहलू तक पूरी गहराई और तीव्रता से आकृष्ट करना तथा अपेक्षित परिवर्तन का प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रस्ताव देना है तो उपन्यास अपनी विशालता (आकारगत) और मंथर प्रवाह से पाठक को पूरे इलाक़े की सैर कराता चलता है। उपन्यासकार को चरित्रों के विकास और

उनकी अन्तर्क्रियाओं की बुनावट के आधार पर अभिव्यक्ति का अपेक्षया अधिक अवकाश होता है, तो कहानीकार के लिए ऐसी सम्भावनाओं के अत्यन्त सीमित होने के बावजूद एक मुकम्मल तस्वीर बनानी होती है। प्रश्न यह नहीं कि आकार बड़ा या छोटा हो, प्रश्न यह है कि आख्यान का प्रकार अथवा स्वरूप क्या है ? कहानियाँ अपनी अपूर्ण पूर्णता में और उपन्यास अपनी पूर्ण अपूर्णता में सार्थकता पाते आये हैं। अतः कहानी की आलोचना स्वतंत्र विधा के रूप में आवश्यक है।

प्रेमचन्द रचनात्मकता की पाठशाला के केवल शिक्षक ही नहीं छात्र भी बने रहे। यही कारण है कि उनकी रचनाएँ जैसा उन्होंने स्वयं कहा है– ''जीवन की आलोचना है।'' उनकी कहानियाँ हर क़दम पर उनकी दूर दृष्टि का परिचय देती हैं। जीवन का प्रत्येक छोटा-बड़ा प्रसंग उपन्यास का अंग बन सकने की योग्यता रख सकता है, किन्तु अक्सर यह लेखकीय विशेषाधिकार है कि वह किसी प्रसंग को कहानी के रूप में अधिक मुकम्मल अभिव्यक्ति दे सकता है अथवा किसी उपन्यास-अंश के रूप में। प्रेमचंद ने इस लेखकीय विशेषाधिकार का बेहद सार्थक उपयोग किया है।

इस कहानी के रचना-विधान में जनतांत्रिक चेतना का आधार बिल्कुल स्पष्ट है। कहानी पारम्परिक अर्थों में नायक के इर्द-गिर्द चक्कर नहीं काटती। नायक के परम्परित स्थान पर व्यक्ति विशेष को नहीं, बल्कि एक ऐसा अस्तित्व है जिसका चरित्र प्रतिनिधिक है। 'मैं' कथा का नायक नहीं वाचक है। यदि यह प्रश्न करें कि नायक कौन है तो गया भी इस कहानी का नायक नहीं है। घटना की प्रधानता भी इस कहानी की रचना का सूत्र नहीं देती। यहाँ उपस्थित पात्र, उनके परस्पर व्यवहारों और घटनाओं का सिलसिला सब मिलाकर देश की ऐतिहासिक आवश्यकता के अनुकूल जीवन-विधि के चयन का विवेक अर्जित करने के लिए जनतांत्रिक अवकाश का सृजन करते हैं। इस अर्थ में यह कहानी प्रेमचन्द की कहानी-कला की प्रौढ़ि का प्रमाण है।

12.6 वर्तमान भारतीय जीवन-सन्दर्भ में इस कहानी की प्रासंगिकता

सामान्यतः कला और विशेषतः साहित्य के क्षेत्र में रचना की प्रासंगिकता के दो आयाम हैं– तात्कालिक और सार्वकालिक। इसी आधार को ध्यान में रखकर साहित्य की कालजीविता और कालजयिता की चर्चा की जाती है। वर्तमान भारतीय जीवन-सन्दर्भ में इस कहानी की प्रासंगिकता को परखने के लिए प्रेमचन्द के साहित्य विषयक विचारों को जानना ज़रूरी है। उन्होंने लिखा है कि– ''साहित्य उस रचना को कहेंगे, जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गयी हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुन्दर हो और जिसमें दिल और दिमाग़ पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप से उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सचाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गयी हों। तिलिस्माती कहानियों, भूत-प्रेत की कथाओं और प्रेम-वियोग के आख्यानों से किसी ज़माने में हम भले ही प्रभावित हुए हों, पर अब उनमें हमारे लिए बहुत कम दिलचस्पी है। इसी प्रसंग को और स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है–''अब साहित्य केवल मन-बहलाव की चीज़ नहीं है, मनोरंजन के सिवा उसका और भी कुछ उद्देश्य है। 'गुल्ली डण्डा' कहानी का प्रयोजनगत सन्दर्भ उपरिलिखित पंक्तियों में पूरी तरह से अभिव्यक्ति पाता है। जैसा हम देखते आये हैं कहानीकार का उद्देश्य ऐतिहासिक नज़रिए और ताक्रिक विधि से सभ्यता-विमर्श का आधार विवेक विकसित करना है। आज का भारतीय समाज जिन

विसंगतियों से ग्रस्त होकर विकास की अपेक्षित दिशा और गति पाने में अक्षम साबित होता रहा है; उन्हें कई प्रसंगों में प्रेमचन्द के साहित्य द्वारा अर्जित विवेक के बल पर दूर किया जा सकता है। उदाहरण के लिए समाज के उच्च मध्यवर्गीय लोगों में व्याप्त दिखावा और जन-साधारण से बढ़ती दूरी; शिक्षा-पद्धति में निहित ख़ामियों का सतक्र विरोध; व्यापक जन-समुदाय की व्यवहार-प्रणाली और सोच को बदलने की चेष्टा; जीवन के व्यावहारिक सन्दर्भों में जनतांत्रिक विकल्प की खोज और आत्मावलोकन की प्रेरणा आदि। ये प्रसंग मानव-प्रकृति से अपने सीधे जुड़ाव के कारण न केवल तब बल्कि अब भी प्रासंगिक हैं। मानव-प्रकृति की अन्तरंग परख, गहन एवं सतक्र विवेचन, रचनात्मक दृष्टि में निहित व्यापकता और दूरदर्शिता के साथ आत्मीय संवादधर्मी सम्प्रेषणीयता के कारण इनकी अधिसंख्य रचनाएँ न केवल आज बल्कि आगे भी प्रासंगिक बनी रहेंगी।

12.7 सारांश

इस कहानी में अभिव्यक्त जीवन-दृष्टि पराधीनता की बेड़ियों में जकड़े राष्ट्र के विकास के वास्तविक परिप्रेक्ष्य की तलाश से अर्जित की गयी है। स्वाधीनता की चेतना का वास्तविक विस्तार कुछ तात्कालिक प्रश्नों के उत्तरों तक सीमित न होकर अत्यंत व्यापक है। स्वाधीनता को जीवन के समग्र विस्तार में देखना और दिखाना ही इस कहानी का आधार कारक है। केवल ऊँची तालीम या ऊँची नौकरी पा लेने से कोई स्वाधीन नहीं हो जाता; स्वाधीनता को जीवन के प्रत्येक प्रसंग में सचेत तौर सतत प्रयत्न से अर्जित करना पड़ता है। इस कहानी की व्याख्या और विश्लेषण के क्रम में पाए गये मुख्य बिन्दु निम्नलिखित हैं–

- प्रेमचन्द की ज्यादातर रचनाओं की रचना-प्रक्रिया अपनी गहन आत्मीयता, विलक्षण त्वरा और अनन्य सम्प्रेषणीयता के कारण आत्मसंभवा-सी लगती है। अतः व्याख्या या विश्लेषण के क्रम में समग्र रचना-प्रक्रिया की इस अन्विति का ध्यान रखना बहुत ज़रूरी है।

- प्रेमचंद आधुनिक हिंदी-साहित्य के उन चुने हुए रचनाकारों में से एक हैं जिनकी रचनाओं को न केवल व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक स्वीकृति मिली है, बल्कि रचनाकारों की भावी पीढ़ियों ने विधाओं की सीमा लाँघ कर उनसे प्रेरणा पायी है। व्यावहारिक वस्तु चयन; ऐतिहासिक, तथ्यपरक एवं जनतांत्रिक चेतना; निर्भीक और निर्मम व्यंग्य धर्म; अकुंठ हास्य-बोध और आत्मीय भाषा-प्रवाह के विलक्षण संयोग का नाम प्रेमचंद है। इनका रचनात्मक व्यक्तित्व देखने में सहज, समझे जाने पर नितांत आत्मीय और प्रभाव में परम हितैषी है।

- इनकी रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना के निरन्तर विकास को देखना आवश्यक है। इन रचनाओं की विलक्षणता मात्र इस बात में नहीं कि इनमें राष्ट्रीय चेतना का विकास दर्ज है, बल्कि इनकी विलक्षणता का आधार यह है कि ये रचनाएँ राष्ट्रीय चेतना से बँधी होकर भी उस वृहत्तर भाव-भूमि का संस्पर्ष लिए चलती हैं जिसे हम चेतनागत मानवीयता कहते हैं। इस अर्थ में प्रेमचन्द न केवल हिन्दी, न केवल भारत बल्कि विश्व-मानव के कथाकार हैं। जहाँ दलितों (वंचितों) के प्रति उनकी सहानुभूतिशील पक्षधरता और शोषकों (प्रभुत्व सम्पन्न लोगों) के प्रति उनका आक्रोश असंदिग्ध है।

- प्रेमचन्द की रचनाएँ, ख़ास कर उनकी कहानियाँ, हिन्दी-उर्दू के व्यापक पाठक-वर्ग को संवाद और विमर्श का जनतान्त्रिक माहौल, नज़रिया और विचारों की सही दिशा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से प्रेरित हैं।

- क्रिकेट तथा अन्य अंग्रेजी खेलों की तुलना में गुल्ली-डंडा को ज्यादा महत्वपूर्ण बताना किसी व्यक्ति या लेखक की व्यक्तिगत धारणा मात्र न होकर, सांस्कृतिक राजनीति का एक सुचिन्तित दृष्टिकोण है, जिसके गम्भीर राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक निहितार्थ हैं।

- गुल्ली-डंडा, कथाकार प्रेमचन्द के लिए उनकी और उनके देशवासियों की गर्वीली ग़रीबी! आत्मसम्मान तथा आर्थिक व्यावहारिकता के साथ सांस्कृतिक विरासत के प्रति लगाव का प्रमाण है। जबकि तथाकथित आधुनिकता के नाम पर पश्चिमीकरण की अन्धी दौड़ में शामिल होकर अपनों के बीच अपनी विशिष्टता देखने और दिखलाने में मशगूल भारतीयों के प्रति यह कहानी एक कड़ी फटकार भी है और चेतावनी भी।

- कहानीकार की सम्प्रेषण-सिद्धि इस बात में है कि वाच्यार्थ और निहितार्थ परस्पर दूरी के बावजूद न केवल पूरक बल्कि अन्योन्याश्रित प्रतिस्थानापन्न की भूमिका भी निभाते हैं।

- इस कहानी में प्रेमचन्द की कहानी-कला की तमाम खूबियाँ आरम्भ से अंत तक बहुत सफलतापूर्वक उस सार्थकता का सृजन करती हैं, जो किसी भी रचनाकार के लिए एक सपने की तरह है। प्रेमचन्द की कथा-भाषा अपने सहज प्रवाह के कारण लेखक कथ्य और पाठक के बीच के अंतराल को चुटकियों में मिटाती चलती है। कहना न होगा कि कथास्वाद का ऐसा अनुभव हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं में ही नहीं बल्कि विश्व-साहित्य में भी कम ही पाया जाता है।

- प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में देश से जुड़ी तमाम समस्याओं (आज़ादी से लेकर सामाजिक परिवर्तन) को उनकी पूरी गम्भीरता के साथ प्रस्तुत करते हुए भी कभी मनोरंजन तत्व की उपेक्षा नहीं की। यही कारण है कि उनकी रचनाओं का व्यक्तित्व ऐसा बन पड़ा जिसने उन्हें हिंदी साहित्य में दीर्घकालिक और व्यापक प्रसिद्धि दी है।

- सामाजिक सोच को बदलने के लिए शिक्षा के क्षेत्र में अपेक्षित परिवर्तनों की बाट जोहने का वक़्त न था। अतः प्रेमचन्द ने ऐसी विधा का चयन किया जो व्यापक हिन्दी जन-समूह को न केवल अपेक्षित दिशाओं की सूचना देती है बल्कि इस नवीन मूल्य-व्यवस्था के स्वाभाविक अभिग्रहण का सहज परिवेश भी तैयार करती है।

- आज का भारतीय समाज जिन विसंगतियों से ग्रस्त होकर विकास की अपेक्षित दिशा और गति पाने में अक्षम साबित होता रहा है; उन्हें कई प्रसंगों में प्रेमचन्द के साहित्य द्वारा अर्जित विवेक के बल पर दूर किया जा सकता है।

- मानव-प्रकृति की अन्तरंग परख, गहन एवं सतर्क विवेचन, रचनात्मक दृष्टि में निहित व्यापकता और दूरदर्शिता के साथ आत्मीय संवादधर्मी सम्प्रेषणीयता के कारण इनकी अधिसंख्य रचनाएँ न केवल आज बल्कि आगे भी प्रासंगिक बनी रहेंगी।

12.8 अभ्यास

- 'गुल्ली डण्डा' कहानी के कथ्य और रूप को आकार देने में इसके रचनात्मक परिवेश की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
- 'गुल्ली डण्डा' कहानी में वर्णित घटनाक्रम के आधार पर इसमें निहित सभ्यता-समीक्षा के स्वरूप का परिचय दीजिए।
- 'गुल्ली डण्डा' कहानी में प्रस्तावित नवीन जीवन-मूल्यों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
- 'गुल्ली डण्डा' कहानी में प्रयुक्त सम्प्रेषण-विधि की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
- वर्तमान भारतीय जीवन-सन्दर्भ में इस कहानी की प्रासंगिकता पर प्रकाश डालिए।

इकाई 13 'जुलूस' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 'जुलूस' : स्वाधीनता आंदोलन की कथा-प्रस्तुति

13.3 अहिंसा का आदर्श

13.4 भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का स्त्री-पक्ष

13.5 साम्प्रदायिक-सौहार्द्र का राग

13.6 जनता की मनोवृत्ति में परिवर्तन : स्वाधीनता आंदोनल का वास्तविक लक्ष्य

13.7 इब्राहिम अली : त्याग और सहिष्णुता का अनन्य उदाहरण

13.8 मिठ्ठनबाई : जुलूस का स्त्री-स्वर

13.9 जुलूस : शिल्प-कौशल

13.10 सारांश

13.11 अभ्यास

13.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप कथा सम्राट मुंशी प्रेमचन्द की एक महत्वपूर्ण कहानी 'जुलूस' का अध्ययन करेंगे। कोई भी बड़ा रचनाकार अपने समय और समाज से निरपेक्ष होकर नहीं लिखता है। वह अपने समाज की चुनौतियों का सीधा मुकाबला करता है। प्रेमचंद को पराधीन भारतवर्ष की चुनौतियों और उसकी आवश्यकताओं का सम्यक् बोध था।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम के दौर में लिखी गई उनकी यह कहानी, विश्लेषण और मूल्यांकन के क्रम में उनकी प्रतिबद्धता को रेखाकिंत करती है। इस कहानी के विश्लेषण और मूल्यांकन के बाद आप जान सकेंगे/सकेंगी कि–

- प्रेमचंद की 'जुलूस' कहानी भारतीय स्वाधीनता-आंदोलन के इतिहास की प्रामाणिक कथा-प्रस्तुति है;
- भारतीय स्वाधीनता-संघर्ष वास्तव में व्यापक जनांदोलन था;
- आंदोलन में विजय का अर्थ, जनता की मनोवृत्ति में परिवर्तन था;
- इब्राहिम अली के व्यक्तित्व की उदारता को जान पायेंगे/पायेंगी;
- मिठ्ठनबाई के चरित्र के माध्यम से भारतीय नारी के त्याग, नैतिक बल और उसके व्यक्तित्व की दृढ़ता से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी; और
- 'जुलूस' कहानी के शिल्प-पक्ष की विशेषताओं से परिचय प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी।

13.1 प्रस्तावना

प्रेमचन्द, हिन्दी कहानी के शलाका पुरुष हैं। हिन्दी कहानी को उन्होंने एक नई पहचान और ऊँचाई प्रदान की है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में प्रेमचन्द का रचना-कर्म असाधारण महत्व का है। उनकी कहानियाँ, मौलिकता, मार्मिकता, सोद्देश्यता और शैल्पिक दृष्टि से मानक साबित हुईं। प्रेमचन्द ने हिन्दी कहानी को कथ्य-वैविध्य और कहानी कहने के तरीके से परिचित कराया। 1907 में उनकी एक छोटी कहानी 'दुनिया का अनमोल रतन' प्रकाशित हुई और धीरे-धीरे वह एक शीर्ष कहानीकार के रूप में स्थापित हो गये।

प्रेमचन्द की अधिकांश कहानियाँ मानसरोवर के आठ खण्डों में संकलित हैं। कुछ कहानियाँ 'कथन' और 'गुप्त धन' (दो खण्ड) में भी संगृहीत हैं। एक सामान्य अनुमान के आधार पर प्रेमचन्द ने लगभग दो सौ सत्तर कहानियाँ लिखी होंगी। इनमें सभी कहानियाँ महत्वपूर्ण नहीं हैं। कुछ कहानियाँ सामान्य कोटि की हैं और कुछ विश्व स्तरीय हैं। प्रेमचन्द की कुछ स्तरीय कहानियाँ– बूढ़ी काकी, पूस की रात, ईदगाह, आत्माराम, सद्‌गति, शतरंज के खिलाड़ी, ठाकुर का कुँआ आदि हैं, जो उन्हें विशिष्ट कहानीकार का दर्जा दिलाती हैं।

'जुलूस' भारतीय स्वाधीनता- आंदोलन की पृष्ठभूमि में लिखी गई, राजनीतिक कहानी है। यह कहानी 'हंस' पत्रिका के मार्च, 1930 के अंक में प्रकाशित हुई थी। सन् 1930 ई. भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास का अत्यन्त महत्वपूर्ण वर्ष है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की राजनीति, आक्रामक हो गई थी। विनम्रता और सहयोग से अंग्रेजी सरकार कुछ भी अधिकार देने को तैयार नहीं थी। गांधी जी ने फिर से नेतृत्व सँभाल लिया था और उन्होंने कांग्रेस के अधिवेशन में 'पूर्ण स्वराज्य' का प्रस्ताव पास करा लिया था। यह आजादी की लड़ाई का एक निर्णायक अध्याय था। इस संबंध में गांधी जी के जीवनीकार कृष्ण कृपलानी ने भी अपनी पुस्तक में दर्ज़ किया है कि, ''1929 तक कांग्रेस के विभिन्न गुट फिर एक हो चुके थे। वे सक्रिय होने के लिए बैचेन थे और नेतृत्व के लिए महात्मा की ओर देख रहे थे। जब वर्ष के अंतिम दिन उन्होंने कांग्रेस के अधिवेशन में खुद एक प्रस्ताव लाकर 'पूर्ण स्वाधीनता' को राष्ट्रीय नीति का लक्ष्य बनाया तो स्पष्ट हो गया कि, वे ब्रिटिश शासन को खुली चुनौती देने के लिए जनता का नेतृत्व करने के लिए तैयार थे। उन्होंने पूर्ण स्वराज्य की शपथ लिखी और देश भर में करोड़ों लोगों ने 26 जनवरी 1930 को यह शपथ ली। उसी दिन के बाद यह दिन स्वाधीनता दिवस के रूप में मनाया जाने लगा। (गांधी : एक जीवनी, पृ. 125) प्रेमचन्द की कहानी 'जुलूस' में भारत के स्वाधीनता आंदोलन में गाँधी जी के अहिंसक और शांतिपूर्ण आंदोलन की भूमिका और इसे व्यापक जन-समर्थन मिलने का सत्य रेखांकित है। सच्चे अर्थों में भारत की आजादी का संघर्ष, जन-संघर्ष था और इसका चरित्र राष्ट्रीय और धर्म-निरपेक्ष था। 'जुलूस' के अध्ययन व विश्लेषण से यह समझा जा सकता है। प्रेमचंद स्वयं पूर्ण स्वराज्य की नीति के कट्‌टर समर्थक थे। उन्होंने केशोराम सब्बरवाल को लिखा था– ''इस वर्ष कांग्रेस ने एक कदम आगे बढ़ाया है और स्वराज्य का प्रस्ताव पास किया है। इस बारे में भारत में बड़ा मतभेद है। लोग इतना आगे तक जाने के लिए तैयार नहीं है और नये नेता पूर्ण स्वराज्य से कम लेने के लिए तैयार नहीं हैं। मेरा विचार है, पूर्ण स्वराज्य की माँग गर्व से अंधे ब्रिटिश साम्राज्यवाद का उचित उत्तर है। डोमिनियन स्टेट्स तो एक धोखा है।'' (प्रेमचन्द, मदनगोपाल, पृ. 83-84) प्रेमचन्द 'पूर्ण स्वराज्य' के संकल्प को सत्ता-मद में अंधें अंग्रेजों के लिए करारा उत्तर मानते हैं। उनके इस मंतव्य से भली प्रकार समझा जा सकता है कि, उनकी अपनी राजनीतिक इच्छा क्या थी? किसी भी सच्चे राष्ट्रभक्त की तरह, उनके

लिए देश की और देशवासियों की मुक्ति ही उनकी अपनी महत्वाकांक्षा थी। उन्होंने स्वयं एक बार विशाल भारत के संपादक बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखा था कि, ''मेरी आकांक्षाऐं बहुत थोड़ी हैं। इस समय मेरी सबसे बड़ी आकांक्षा यही है कि, हम स्वराज्य-संग्राम में विजयी हों। धन या यश की लालसा मुझे नहीं रही। खाने भर को मिल ही जाता है। मोटर और बंगले की मुझे हवस नहीं। हाँ, यह जरूर चाहता हूँ कि, दो चार उच्च कोटि की पुस्तकें लिखूँ, पर उनका उद्देश्य भी स्वराज्य प्राप्ति ही हो।'' (प्रेमचन्द, मदनगोपाल, पृ. 84) प्रेमचन्द प्रायः किसी न किसी समस्या को केन्द्र में रखकर कहानियाँ लिखते थे। उनकी कहानियों में मुख्यतः धार्मिक आडम्बर, छूआछूत, विधवा समस्या, सौतेली माँ, किसानों का अंधविश्वास व साम्प्रदायिकता आदि की चर्चा है। इनके साथ ही वह राजनीतिक विषयों पर भी कहानियाँ लिखते हैं। खण्ड-4 की कहानियाँ 'जुलूस', 'समर-यात्रा' और 'आहुति' राजनीतिक प्रकरणों पर आधारित कहानियाँ हैं। 'जुलूस' कहानी दो 'जुलूसों' के बीच गतिमान रहती है। पहला जुलूस 'पूर्ण स्वराज्य' की प्राप्ति के लिए निकलता है। एक बुजुर्ग नेता इब्राहिम अली के नेतृत्व में और दूसरा जुलूस इब्राहिम अली की मृत्यु के बाद, उनकी शवयात्रा के रूप में निकलता है। इन्हीं दो जुलूसों के मध्य, प्रेमचंद ने भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के स्वरूप, उसकी प्रकृति, आंदोलन में सम्मिलित शक्तियों की पहचान, जनता के उत्साह, सरकारी दमन-चक्र, नेतृत्व की प्रामाणिकता आदि को कहानी के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इब्राहिम अली के नेतृत्व में एक शांतिपूर्ण जुलूस निकलता है, जिसमें बड़ी संख्या में लोग सम्मिलित हैं। सोत्साह। जुलूस को आगे बढ़ने से रोकने के लिए दारोगा बीरबल सिंह अपने साथियों के साथ मौजूद है। इब्राहिम अली जुलूस को आगे बढ़ाने की अनुमति माँगते हैं, लेकिन बीरबल सिंह उन्हें अनुमति न देकर उन पर घोड़ा चढ़ा देता है और बेटन से उनके सिर पर चोट करता है। 'जुलूस' बिखर जाता है। इब्राहिम अली अचेत हो जाते हैं। उनके घायल होने का समाचार बाजार पहुँचता है तो बाजार बंद हो जाता है और लोग क्रुद्ध भाव में 'जुलूस' स्थल पर पहुँचते हैं। भीड़ पुलिस से बदला लेना चाहती है, लेकिन जैसे ही इब्राहिम अली के कानों में यह बात पहुँचती है, वह जुलूस के वापस होने का आदेश करते हैं। उनका कहना है कि, हमें अपने लोगों से बदला नहीं लेना है, उनकी मनोवृत्ति में परिवर्तन करना है और यही असली विषय है, जिनमें हम कामयाब हो गए हैं। तीन दिन के बाद घायल इब्राहिम अली की मौत हो जाती है और उनके शव को लेकर फिर जुलूस निकलता है। शव को इब्राहिम की वसीयत के अनुसार गंगा में स्नान करवाकर दफन किया जाता है। जुलूस के लोग यही करने निकले हैं। जुलूस की जिम्मेदारी फिर से पुलिस विभाग बीरबल सिंह को देता है। बीरबल देशभक्तों के उत्साह और अपनी पत्नी के धिक्कारने पर राजभक्ति छोड़ देते हैं। प्रायश्चित करते हैं, इब्राहिम अली के घर जाकर, उनकी विधवा स्त्री से क्षमा-याचना करते हैं। कहानी यहीं समाप्त होती है, लेकिन एक मार्मिक संदेश दे जाती है कि, देश का मान सर्वोपरि है और उसके लिए सर्वोच्च बलिदान भी कम है।

13.2 'जुलूस' : स्वाधीनता आंदोलन की कथा-प्रस्तुति

प्रेमचन्द ने भारत के स्वाधीनता आंदोलन में एक लेखक की हैसियत से भागीदारी करने के साथ ही साथ एक राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में भी सहभागिता की थी। वह कांग्रेस के आंदोलनों में अक्सर जाते थे। मदन गोपाल ने भी इस संबंध में उल्लेख किया है– ''प्रेमचन्द देश की स्वतंत्रता के उत्कट अभिलाषी थे। चाहे कानपुर हो या लखनऊ अपना थोड़ा समय सदा ही कांग्रेस के काम में लगाते थे। स्वाधीनता-संग्राम को सहायता पहुँचाने के ही उद्देश्य से उन्होंने 1930 में हंस नाम की राजनीतिक और साहित्यिक

पत्रिका आरम्भ की। (प्रेमचन्द, पृ. 83) प्रेमचन्द के लेखन की एक बड़ी खूबी यह है कि, वह इन्वाल्व होकर लिखते हैं, तटस्थ होकर नहीं। 'जुलूस' कहानी में भी ऐसा ही है। वह स्वयं एक उत्साही और प्रतिबद्ध राष्ट्र-सेवक हैं। उन्होंने भारत की स्वाधीनता के आंदोलनों को अत्यन्त निकट से देखा, परखा और प्रतिभाग किया था। यही कारण है कि, वह अपनी कहानी में आंदोलन के वास्तविक चरित्र को पहचानकर लिख पाते हैं। 'जुलूस' कहानी पढ़कर यह आसानी से जाना जा सकता है कि, देश में आजादी का संघर्ष कितना प्रभावशाली था। 'पूर्ण स्वराज्य' का जुलूस है, जिसमें बूढ़े, बालक और युवक उत्साह से झंडे लिए हुए वंदे मातरम्' गाते हुए आगे बढ़ रहे हैं। उन्हें किसी भी प्रतिबंध या दण्ड की परवाह नहीं है। वे अदम्य हौसले के साथ अपनी और अपने राष्ट्र की मुक्ति के लिए संघर्ष कर रहे हैं। जनता का उत्साह, प्रेरक है। प्रेमचन्द कहानी में लिखते हैं कि ''जुलूस स्वाधीनता के नशे में चूर चौरस्ते पर पहुँचा तो देखा, आगे सवारों और सिपाहियों का एक दस्ता रास्ता रोके खड़ा है।''– (जुलूस)। जुलूस में सम्मिलित लोग मानों नशे में चूर हैं। उन्हें स्वाधीनता के अतिरिक्त और कुछ भी दृश्य नहीं है। इस तरह कहानीकार तत्कालीन आंदोलनों की तस्वीर खींच देता है। स्वाधीनता आंदोलन में जनता की भारी हिस्सेदारी थी। सभी जातियों, धर्मों और संप्रदायों के लोग अपने-अपने मतभेद भुलाकर सम्मिलित थे। सभी आयु वर्ग के स्त्री-पुरुष बूढ़े और बच्चे जोर -शोर से सम्मिलित होते थे। यह एक मिसाल है। इतिहास आग्रही हो सकता है, साहित्य नहीं। भारत के स्वाधीनता-संघर्ष का इतिहास लिखने वाले इतिहासकार अपनी रुचि और आग्रह के चलते, संभव है, उस मुक्ति-संग्राम की स्पष्ट छवि न लिख पायें, लेकिन साहित्यकार ऐसा नहीं करता है। इसे 'जुलूस' के माध्यम से बखूबी जाना जा सकता है। 'जुलूस' कहानी पढ़कर यह साफ होता है कि, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम वस्तुतः एक जनान्दोलन था, जिसका चरित्र सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय था। 'जुलूस' में 'पूर्ण स्वराज्य' के जुलूस का नेतृत्व एक वृद्ध मुसलमान इब्राहिम अली करते हैं। प्रेमचन्द, शंभूनाथ, दीनदयाल और मैकू की बातचीत के बहाने आंदोलन की असली चेतना दिखाते हैं। शंभूनाथ और दीनदयाल व्यापारी हैं। जुलूस को बाजार से निकलता देख रहे हैं और उसकी सफलता के प्रति शंका व्यक्त करते हैं। मैकू नाम का एक व्यक्ति खड़ा है, जिसके गले में चट्टियों और स्लीपरों की माला है। वह इन दोनों सेठों की बाते सुनकर हँसता है। शंभूनाथ के पूछने पर कि, मैकू क्यों हँसें? वह कहता है ''मैकू हँसा इस बात पर कि, जो तुमने कहा कि, कोई बड़ा आदमी जुलूस में नहीं है। बड़े आदमी क्यों जुलूस में आने लगे, उन्हें इस राज में कौन आराम नहीं है? बँगलों और महलों में रहते हैं, मोटरों पर घूमते हैं, साहबों के साथ दावतें खाते हैं, कौन तकलीफ है। मर तो हम लोग रहे हैं, जिन्हें रोटियों का ठिकाना नहीं। इस बखत कोई टेनिस खेलता होगा, कोई चाय पीता होगा, कोई ग्रामोफोन लिए गाने सुनता होगा, कोई पारिक की सैर करता होगा, यहाँ आए पुलिस के कोड़े खाने के लिए? तुमने भी भली कही?'' (जुलूस) आंदोलन जनता का, जनता के लिए, जनता की मुक्ति के लिए था। इसका असली चरित्र यही था। तथाकथित भद्र-लोक अपने स्वार्थ सिद्धि में संलग्न था। अंग्रेजी सरकार से उसकी निकटता जगजाहिर थी। सरकार उन्हें रायबहादुर और सर आदि उपाधियों से नवाजकर उनकी निष्ठा खरीदती थी। ये बुद्धिजीवी, उच्च वर्ग के लोग अपना स्वाभिमान बेचकर खुश थे।

13.3 अहिंसा का आदर्श

स्वाधीनता आंदोलन में गांधी जी के अहिंसात्मक आंदोलन का प्रभाव व्यापक था। 'जुलूस' में इब्राहिम अली की कार्य शैली उनके व्यक्तित्व पर गांधीजी व उनके राजनीतिक दर्शन की स्पष्ट छाप है। इब्राहिम विनम्र हैं, जुझारू हैं, त्यागी हैं, अहिंसा के पक्षधर हैं और नैतिकता व आत्मिक बल उनके मुख्य अस्त्र हैं। वह विपरीत परिस्थिति में भी अपना संयम

बनाए रखते हैं। जब वह जुलूस लेकर आगे बढ़ने का प्रयास करते हैं और दारोगा बीरबल सिंह उन्हें रोकता है तो दोनों के बीच की वार्ता से स्पष्ट हो जाता है कि, आंदोलन किस तरह का है? बीरबल के बहुत मना करने और डराने का भी उन पर कोई असर नहीं पहुँचता है। इब्राहिम ने गंभीर भाव से कहा— ''वापस तो हम न जायेंगे। आपको या किसी को भी, हमें रोकने का कोई हक नहीं। आप अपने सवारों, संगीनों और बंदूकों के जोर से हमें रोकना चाहते हैं, रोक लीजिए, मगर आप हमें लौटा नहीं सकते।'' (जुलूस) गांधीजी ने अपने व्यक्तिगत आचरण से यह सिद्ध कर दिया था कि, नैतिक और आत्मिक बल सबसे बड़ा बल है और इसके आगे बाक़ी सारी शक्तियों को झुकना पड़ता है। उन्होंने ऊँचे नैतिक मानदण्ड स्थापित किए थे। सत्य के लिए वह बड़े से बड़ा नुकसान भी सहर्ष स्वीकार कर लेते थे। इतिहास में ऐसे कई उल्लेख हैं कि, सफलता के अत्यन्त निकट पहुँचकर, उन्होंने कई बार अपने नेतृत्व में चलने वाले आंदोलनों को स्थगित कर दिया था। इसके लिए राजनीतिक हल्कों में उन्हें व्यापक और तीखी प्रतिक्रिया का भी सामना करना पड़ता था। गांधीजी के जीवनीकार कृष्ण कृपलानी ने भी यह बात रेखाकिंत की है—

''गांधी जी उत्साह से भरे हुए थे। लगता था अहिंसा का जादू , वह चमत्कार दिखा रहा था, जिसकी वे आशा करते थे और जिसका दाव करते थे, लेकिन एकाएक स्थिति बदल गई। फरवरी 1922 में उत्तर प्रदेश में 'चौरीचौरा' नामक स्थान पर जनता हिंसा पर उतर आई। गुस्से से भरी भीड़ ने पुलिस चौकी में आग लगा दी थी और अंदर फँसे अनेक कांस्टेबुल जल मरे थे। गांधी जी को असहनीय धक्का लगा और उन्होंने अपने लगभग सभी सहयोगियों की सलाह के खिलाफ जाकर असहयोग आंदोलन को स्थगित कर दिया।'' (गांधी : एक जीवनी, पृ. 114) असहयोग आंदोलन का अकस्मात् स्थगित कर दिया जाना राजनीतिक दृष्टि से अलाभकर था, कितु गांधीजी अपने सिद्धांतों पर दृढ़ थे। उन्होंने आंदोलन में हुई हिंसा के प्रायश्चित स्वरूप आंदोलन रोक दिया। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया कि, ''लगभग समूचे आक्रामक कार्यक्रम की एकाएक वापसी राजनीतिक दृष्टि से अगंभीर और अविवेकपूर्ण हो सकती है। लेकिन उन्होंने आगे अपनी बात को स्पष्ट करते हुए कहा कि, इसमें कोई शक नहीं कि यह धार्मिक दृष्टि से गम्भीर है और मैं शंकालुओं को यह आश्वासन देने का साहस करता हूँ कि, मेरी विनम्रता और गलती की स्वीकृति से देश का भला ही होगा।'' (गांधी : एक जीवनी, पृ. 114) 'जुलूस' के इब्राहिम अली भी किसी भी क़ीमत पर अहिंसा के मार्ग से विचलन स्वीकार न करते हैं। घायल अवस्था में पड़े हुए जब उन्हें यह समाचार मिलता है कि, शहर से भारी संख्या में लोग हाथों में लाठी-डंडे आदि लिए हुए जुलूस-स्थल पर आ रहे हैं। ''देखते-देखते अधिकांश दुकानें बंद हो गई। वह लोग जो दस मिनट पहले तमाशा देख रहे थे इधर-उधर से दौड़ पड़े और हजारों आदमियों का एक विराट दल घटना-स्थल की ओर चला। यह उन्मत्त, हिंसामद से भरे हुए मनुष्यों का समूह था, जिसे सिद्धांत और आदर्श की परवाह न थी। जो मरने के लिए ही नहीं, मारने के लिए भी तैयार थे। कितनें ही के हाथों में लाठियाँ थीं, कितने ही जेबों में पत्थर भरे हुए थे। न कोई किसी से कुछ बोलता था, न पूछता था। बस, सबके-सब मन में एक दृढ़ संकल्प किए, लपके चले जा रहे थे, मानों कोई घटा उमड़ी चली आती हो।'' (जुलूस) 'चौरी-चौरा' की घटना का स्मरण कराती हुई पंक्तियाँ हैं। प्रेमचंद यहाँ साफ-साफ गांधीजी के सिद्धांत और आदर्श-प्रेम का ही चित्र खींच रहे हैं। हिंसा से न तो बड़ा लक्ष्य हासिल किया जा सकता है और नहीं कोई स्थायी काम सम्पन्न किया जा सकता है। तभी तो गाँधीजी लाभ-हानि के सामान्य गणितीय प्रश्नों में न उलझकर उसे त्यात्य समझते हैं। इब्राहिम अचेत हैं और अचानक शोर सुनकर उन्हें भान होता है कि, कुछ लोग शहर से आ रहे हैं और स्वयं सेवक कैलाश से पूछकर वह निश्चित भी कर लेते हैं और निर्णय करते हैं कि वापस जाना चाहिए ''इब्राहिम-तो

अब खैरियत नहीं है। झंडा लौटा दो। हमें फौरन लौट चलना चाहिए, नहीं तो तूफान मच जाएगा। हमें अपने भाइयों से लड़ाई नहीं करनी है। फौरन लौट चलो।'' (जुलूस) इब्राहिम का चरित्र गांधीजी के आदर्शों से निर्मित है और उसमें उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप लगी हुई है, बिल्कुल गांधीजी की तरह वह भी स्पष्टतः देख और समझ पाता है कि, हमारा युद्ध, धर्मयुद्ध है और इसे कलंकित नहीं होने देना है। गांधीजी की असहयोग आंदोनल के स्थगन के वक्त कही गई बात नेपथ्य से सुनाई पड़ रही है– ''फिर, वह यह भी नहीं चाहते कि शहर में लूट और दंगे का बाजार गर्म हो जाय और हमारे धर्मयुद्ध का अंत लूटी हुई दुकानें, फूटे हुए सिर हों, उनकी विजय का सबसे उज्ज्वल चिह्न यह था कि उन्होंने जनता की सहानुभूति प्राप्त कर ली थी। वही लोग जो पहले उन पर हँसते थे, उनका धैर्य और साहस देखकर उनकी सहायता के लिए निकल पड़े थे'' (जुलूस) 'जुलूस' स्वाधीनता आंदोलन के अहिंसक स्वरूप और उसकी जन-स्वीकृति का बयान है। गांधीजी का साफ कहना था कि 'जैसे ही हम अपना भय जीत लेंगे। हम स्वाधीन हो जायेंगे। हमें स्वाधीन, खुद से होना है, अंग्रेजों से नहीं और उन्होंने अपने आचरण से इसे बार-बार प्रमाणित किया। यही वजह है कि, भारत की स्वाधीनता का आंदोलन संगठित, दिशायुक्त, मुक्तिकामी जनांदोलन था, जिसकी व्यापक स्वीकृत थी और गांधीजी के रूप में जिसके पास एक प्रामाणिक नेतृत्व उपलब्ध था।

13.4 भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का स्त्री-पक्ष

स्वाधीनता संघर्ष में स्त्रियों की रचनात्मक भूमिका थी। वे पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर बराबरी के स्तर पर आंदोलनों में प्रतिभागी थीं। इसके लिए उन्हें अत्यधिक कष्ट सहना पड़ता था। परिवार और पारिवारिक जिम्मेदारियों की उपेक्षा करके भी, वे इन आंदोलनों में सम्मिलित होती थीं। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का यह वैशिष्ट्य है कि, इसमें तेजस्विनी भारतीय नारियाँ मुखर थीं। 'जुलूस' की मिठ्ठनबाई के बहाने प्रेमचन्द आंदोलन के स्त्री-पक्ष को उजागर करते हैं। मिठ्ठनबाई, अपने पति परमेश्वर को, उनके जुलूस पर किए गए अत्याचार के लिए धिक्कारती है और उन्हें ग्लानि अनुभव करने के लिए विवश कर देती है। किसी भी हिंदू पतिव्रता-स्त्री के लिए पति-विरोध जैसा कार्य दुस्साहसिक कृत्य है, लेकिन मिठ्ठनबाई राष्ट्र-भक्ति के लिए व देशवासियों की मुक्ति के लिए अपने पति के द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों का विरोध करती है। वह उसे बार-बार धिक्कारती है। तीखे व्यंग्य करती है, जो उसके पति को बुरी तरह झकझोरते हैं ''मिठ्ठनबाई-खूब समझती हूँ। डीएसपी पीछे खड़ा था। तुमने सोचा होगा, ऐसी कारगुजारी दिखाने का अवसर शायद फिर कभी मिले या न मिले। क्या तुम समझते हो, उस दल में, कोई भला आदमी न था? उसमें कितने आदमी ऐसे थे, जो तुम्हारे जैसों को नौकर रख सकते हैं। ''विद्या में तो शायद अधिकांश तुमसे बढ़े हुए होंगे। मगर तुम उन पर डंडे चला रहे थे और उन्हें घोड़ों से कुचल रहे थे, वाह री जवाँ मर्दी।'' (जुलूस) स्त्रियाँ, भावना के स्तर पर भारत की स्वाधीनता से जुड़ी हुई थीं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि, वे भीड़ का हिस्सा मात्र न होकर या शो-पीस भर न होकर विभिन्न राजनीतिक आंदोलनों में बढ़-चढ़कर सहयोग करती थीं। स्वयंसेवियों को भोजन कराना, घायलों की उचित सेवा करना, चंदे आदि जुटाकर आंदोलन का आर्थिक आधार बढ़ाना आदि कार्य स्त्रियाँ तत्परता से करती थीं। आंदोलनों की अच्छी समझ भी उन्हें थी। प्रकृति से कोमल मानी जाने वाली स्त्रियाँ निडर और मुक्तभाव से आंदोलनों में भागीदार थीं। एक आह्वान पर वे अपने घरों की सीमाएँ लाँघकर सड़कों पर उतर आती थीं। मिठ्ठनबाई अपने पति के द्वारा निहत्थे आंदोलनकारियो पर किए गए शक्ति-प्रदर्शन को अन्यायपूर्ण और कायरतापूर्ण कार्य मानती है। उसका पति अपने इस काम को फायदे का सौदा बताकर मिठ्ठनबाई को संतुष्ट करना चाहता है, लेकिन चूँकि वह यह अच्छी तरह से जानती है कि, जिन

आंदोलनकारियों पर अत्याचार किया गया है, उनके लक्ष्य त्यागपूर्ण और राष्ट्रहित से जुड़े हुए हैं, इसलिए वह अपने पति को उसकी सभी सफाइयों और तर्कों के बाद भी लांछित करती है। कहानी में प्रेमचन्द ठेठ व्यावहारिक बात रखकर यह बताना चाहते हैं कि, हम लोग करनी और कथनी से दो भिन्न प्रकार के व्यक्ति हैं। मिठ्ठनबाई के पतिदेव उन्हें दुनियादार समझकर उनके बारे में ऐसी धारणा रखते थे कि, उनकी पत्नी, पति की प्रोन्नति के लाभों को ध्यान में रखकर खुश होंगी। दरोगा जी ने समझा था कि यह सूचना देकर वह मिठ्ठन बाई को खुश कर देंगे। सज्जनता और भलमनसी आदि ऊपर की बातें हैं, दिल से नहीं जबान से कही जाती हैं। स्वार्थ दिल की गहराईयों में बैठा होता है। वह गंभीर विचार का विषय है।'' (जुलूस) यह समाज का वास्तविक चेहरा है। दारोगाजी की कोई ग़लती नहीं थी। वह समाज के हल्केपन से परिचित थे, लेकिन यहाँ प्रेमचन्द ने भोली-भाली स्त्री के माध्यम से यह जता दिया है कि, भारतीय स्त्री देश-हित के लिए अपने सुहाग की भी परवाह नहीं करती है। पारंपरिक-स्त्री के लिए पति को लांछन देना, उलाहना देना, उसके सम्मान पर आघात करना, स्वप्न में भी करणीय विषय नहीं था। ऐसे में मिठ्ठन बाई के तीखे व्यंग्य उसे सच्चा राष्ट्रभक्त, बलिदानी और न्याय-पूर्ण साबित करने के साथ ही साथ स्वाधीनता-आंदोलन में स्त्रियों की स्मरणीय भूमिका का साक्ष्य भी मुहैया कराता है। पतिदेव, मिठ्ठनबाई को स्वराज्यवादियों के जुलूस पर अपना पराक्रम दिखाने की बात करते हुए रहते हैं कि ''डीएसपी ने मेरा नाम नोट कर लिया है। सच!'' (जुलूस) वह ऐसा, इस चेष्टा से कहते हैं कि, उनकी पत्नी खुश हो जाएगी कि, उच्चाधिकारियों की नजर में उसके पति की अहमियत बढ़ गई है और तरक्की भी जल्दी ही हो जाएगी। लेकिन जो उत्तर उन्हें अपनी पत्नी से प्राप्त होता है, उसकी उन्हें उम्मीद भी नहीं थी। ''मगर मिठ्ठनबाई के मुख पर हर्ष की कोई रेखा न नजर आई, ऊपर की बातें शायद गहराईयों तक पहुँच गयी थीं! बोली– जरूर कर लिया होगा और शायद तुम्हें जल्दी तरक्की भी मिल जाए। मगर बेगुनाहों के खून से हाथ रँगकर तरक्की पायी, तो क्या पायी; यह तुम्हारी कारगुजारी का इनाम नहीं, तुम्हारे देशद्रोह की कीमत है। तुम्हारी कारगुराजी का इनाम तो तुम्हें तब मिलेगा, जब तुम किसी खूनी को खोज निकालोगे, किसी डूबते हुए आदमी को बचा लोगे।'' (जुलूस) यह प्रेमचन्द की स्त्री है, जिसका अपना व्यक्तित्व है और जिसके पास विवेक है। प्रेमचन्द-साहित्य में स्त्रियाँ, अन्याय के खिलाफ अत्यन्त मुखर हैं। राष्ट्र-प्रेम उनमें कूट-कूटकर भरा है। आत्माभिमानिनी हैं। 'रंगभूमि' की रानी जाह्नवी, सोफिया और इंदु ऐसी ही स्त्रियाँ हैं, जो अन्याय का तीव्र प्रतिकार करती हैं। अन्याय चाहे पति कर रहा हो या प्रेमी। राष्ट्रीय-हित के खिलाफ कोई भी काम इन स्त्रियों को सुहाता नहीं है। 'जुलूस' में मिठ्ठनबाई के साथ ही साथ इब्राहिम अली की शवयात्रा में भारी संख्या में स्त्रियाँ सम्मिलित हैं और उनके बारे में कहानीकार ने कुछ ज्यादा उल्लेख नहीं किया है, लेकिन उनकी बातचीत से साफ नजर आता है कि, स्वाधीनता-आंदोलन का भारतीय स्त्रियों के लिए क्या मायने था? कुछ बानगियाँ प्रस्तुत हैं : ''सहसा एक युवती ने दरोगा जी की तरफ देखकर कहा– कहीं हम लोगों पर डंडे न चला दीजिएगा। आपको देखकर भय हो रहा है।'' (जुलूस) ''दूसरी बोली– आप ही के तो कोई भाई तो थे, जिन्होंने उस माल के चौरस्ते पर इस पुरुष पर आघात किए थे।'' मिठ्ठन बाई ने कहा– आपके कोई भाई न थे, आप खुद थे। बीसियों की मुँहों से आवाजें निकलीं– अच्छा यह वही महाशय हैं? महाशय आपको नमस्कार है। यह आप ही की कृपा का फल है, आज हम भी आपके डंडे के दर्शन के लिए आ खड़ी हुई हैं''। (जुलूस) प्रेमचन्द ने स्त्रियों द्वारा लांछित होते बीरबल सिंह के ग्लानि अनुभव करने की बात लिखी है। बीरबल को स्त्रियाँ बुरी तरह उलाहना देती हैं। यह आंदोलन का स्त्री-पक्ष है, जो यह प्रमाणित करता है कि, भारत की स्वाधीनता का आंदोलन पुरुषों का आंदोलन भर नहीं था, अपितु यह पढ़ी-लिखी, अनपढ़, युवा और वृद्ध सभी तरह की स्त्रियों का भी आंदोलन था।

13.5 सांप्रदायिक-सौहार्द्र का राग

'जुलूस' कहानी हिंदुस्तानी समाज में सांप्रदायिक-सौहार्द्र के राग की कहानी है। 'पूर्ण स्वराज्य' के जुलूस का नेतृत्व बुजुर्ग इब्राहिम अली के हाथ में है। वह सच्चे राष्ट्रभक्त, विनम्र, अहिंसावादी और निडर नेता हैं। उनका व्यक्तित्व गढ़ते हुए प्रेमचन्द साम्प्रदायिकता की विकृतियों को केन्द्र में रखकर चलते हैं। प्रेमचन्द को यह बात अच्छी तरह से पता थी कि, समाज, संगठित होगा, तभी हम अपनी स्वाधीनता प्राप्त कर सकेंगे। इसके लिए आवश्यक है कि, हम जाति, धर्म, भाषा और क्षेत्र आदि संकीर्णताओं के आधार पर बँटे हुए न हों। इब्राहिम का व्यक्तित्व नितांत हिंदुस्तानी है। वह हिंदू और मुसलमान से ऊपर एक आम हिंदुस्तानी चरित्र है, जो आकर्षित करता है। गांधीजी, जाति, धर्म, संप्रदाय और प्रांत आदि जटिलताओं में उलझे हुए भारत का स्वप्न नहीं देख रहे थे और यही दृष्टि प्रेमचन्द की भी है। प्रेमचन्द संगठित और सद्भाव सम्पन्न भारत के पक्षधर थे, जो किसी विशेष वर्ग का न होकर सभी भारतवासियों का है, जहाँ लोगों में प्यार और सौमनस्य हो। साम्प्रदायिक दुर्भावना, भारत में तेजी से फैल रही थी और इससे हमारा राष्ट्रीय आंदोलन कमजोर हो रहा था। प्रेमचंद के लिए यह बात किसी भी सूरत में स्वीकार्य नहीं थी। उन्होंने अपने लेखों, भाषणों और अन्य रचनाओं के माध्यम से सांप्रदायिक-सौहार्द्र के लिए अथक प्रयत्न किया। प्रकाश चन्द्र गुप्त ने प्रेमचंद के बारे में लिखा है कि, ''प्रेमचन्द, साम्प्रदायिक एकता के पक्षधर थे और अपने लेख के माध्यम से देश में व्यापक शान्ति स्थापित करने का उन्होंने प्रयत्न किया।'' (प्रेमचन्द, पृ. 132) सांप्रदायिकता कितनी ख़तरनाक प्रवृत्ति है। भारत से अच्छा अनुभव अन्यत्र कहाँ मिलेगा? प्रेमचन्द सांप्रदायिकता की महामारी और उसकी मारक क्षमता से परिचित थे। सांप्रदायिकता का संक्रमण बहुत तेजी से फैलता है और इसका प्रसार सामाजिक सौहार्द्र नष्ट कर देता है। समाज में अविश्वास और डर का वातावरण निर्मित करता है। मनुष्यता तार-तार हो जाती है और इसका दंश, आने वाली पीढ़ियों तक आसानी से पहुँचता है। प्रेमचंद, साम्प्रदायिकता के खिलाफ एक रचनात्मक मोर्चा क्रिएट करते हैं। क्योंकि विध्वंस का उत्तर सृजन ही होता है। बुराई की चर्चा करना भी उसे बढ़ावा देना है। साहित्य के माध्यम से प्रेमचंद द्वारा तैयार किया गया सांप्रदायिकता-विरोध का यह मॉडल कामयाब भी है। यहाँ यह रेखांकित किए जाने योग्य तथ्य है कि, प्रेमचंद को मुस्लिम समाज और संस्कृति के बारे में प्रामाणिक जानकारी है। हिंदी में उनके जैसा कोई दूसरा रचनाकार दिखाई नहीं पड़ता है जो समान अधिकार से हिंदू और इस्लामी संस्कृति और समाज को जानता हो और उसे अपने लेखन में इस्तेमाल करता हो। वस्तुतः प्रेमचंद सांप्रदायिक सद्भाव के कहानीकार हैं। 'जुलूस' कहानी उनकी इस दृष्टि का जाग्रत प्रमाण है। एक मुसलमान राष्ट्रभक्त वसीयत में अपने अंतिम संस्कार की शर्तों में, अपने शरीर को गंगाजल से स्नान कराने के बाद दफन किए जाने की बात लिखता है। यह एक क़िस्म से 'रेडिकल स्टैण्ड' है। प्रेमचन्द लिखते हैं कि - ''उन्होंने मरते समय वसीयत की थी कि मेरी लाश को गंगा में नहलाकर दफन किया जाय और मेरे मजार पर स्वराज्य का झंडा खड़ा किया जाय।'' (जुलूस)

इब्राहिम की मृत्यु एक मुसलमान या हिंदू की मृत्यु नहीं है, बल्कि धर्मों, जातियों से ऊपर उठे हुए एक सच्चे भारतीय की मृत्यु है और उनकी शवयात्रा में सम्मिलित समूचा शहर यह साबित करता है कि इब्राहिम अली, सबके आत्मीय थे। प्रेमचन्द ने एक बात अत्यन्त मार्मिक तरीके से हमारे सामने रखी है कि, जीवित रहते, स्वार्थ-संबंध के चलते लोग कहीं आते-जाते हैं, लेकिन किसी की मृत्यु के बाद उसकी शवयात्रा में सम्मिलित होना यह निश्चित रूप से कम घटित होने वाली बात है, लेकिन इब्राहिम चूँकि जाति/धर्म की

सीमाओं का अतिक्रम करके राष्ट्रीय हो चुके थे, इसलिए उनकी शव-यात्रा में समूचा शहर एकत्र हो जाता है, शवयात्रा में शामिल लोग भावना और श्रद्धा-भाव से शहीद के अंतिम दर्शन के लिए उमड़े हुए हैं और उनके दर्शन से धन्य अनुभव कर रहे हैं।

13.6 जनता की मनोवृत्ति में परिवर्तन : स्वाधीनता आंदोलन का वास्तविक लक्ष्य

भारत की स्वाधीनता के लिए चलाए जाने वाले विभिन्न आंदोलनों का लक्ष्य, जन-जागरण था। सामान्य भारतीय को उसकी गहरी नींद से झकझोर कर जगाना और उसे उसके स्वयं के अस्तित्व के बारे में जागरूक करना, उसके जातीय गौरव से परिचित कराना और समाज व संस्कृति को विवेक-दृष्टि से जानने-समझने के लिए तैयार करना जैसे कार्य महत्वपूर्ण थे। इसीलिए स्वाधीनता-आंदोलन अपने चरित्र में एक सामाजिक-राजनीतिक आंदोलन था। इसमें सम्मिलित नेता-गण अपने-अपने स्तर पर प्रयासरत थे कि धर्म, जाति, सम्प्रदाय, क्षेत्रीयता की संकीर्णताओं से मुक्त जाग्रत भारतीय तैयार हों। क्योंकि स्वाधीनता की लड़ाई न तो एक दिन में लड़ी जाने वाली लड़ाई थी और न ही अकेले लड़ी जा सकती थी और न तो इसका मूल मंतव्य किसी व्यक्ति, जाति या सम्प्रदाय विशेष की मुक्ति था। कृष्ण कृपलानी का एक मार्मिक उल्लेख जो स्वाधीनता आंदोलन की उपलब्धियों को बहुत संक्षेप में सामने रखता है, प्रस्तुत है– ''सदियों से सोई पड़ी जनता अपनी मानवीय गरिमा को नई चेतना से प्रफुल्लित होकर, साहस और बलिदान की भावना से भरकर जाग उठी। नगरों, कस्बों और गाँवों की गलियों में, चौराहों पर विदेशी कपड़ों की होलियाँ जलने लगी। सदियों से चारदीवारी के अंदर ही घरेलू दुनिया में क़ैद स्त्रियाँ, पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर सड़कों पर निकल पड़ीं और इसी प्रसंग में उन्होंने सदियों पुराने बंधनों से खुद को मुक्त करा लिया।'' (गांधी : एक जीवनी, पृ. 112) स्पष्ट है कि, स्वाधीनता का आंदोलन, जनता की मुक्ति का आंदोलन था। सदियों से सोई जनता और बंधनों में पड़ी स्त्रियाँ, एकाएक मुक्त हो गईं। यह मुक्ति, उन्होंने स्वयं अर्जित की थी। इसीलिए गांधीजी थोपी हुई आजादी की इच्छा न रखकर अर्जित स्वतंत्रता की बात करते थे, जो कि टिकाऊ थी। वह बहुशः कहते थे कि, अंग्रेजों ने भारत को नहीं पाया है, हमने उनको दिया है। वे भारत में अपनी ताक़त के बल पर नहीं बल्कि हमने उनको रखा हुआ है।'' (गांधी : एक जीवनी, पृ. 110) करोड़ों की जनसंख्या वाले भारत देश के लिए जगने पर पराधीन बने रहना असंभव था। यही गांधीजी कहते थे और इसी के लिए उन्होंने प्रयत्न किया। वह स्पष्ट राय रखते थे कि भय से मुक्ति ही स्वराज्य की आत्मा है। प्रेमचन्द अपनी कहानी 'जुलूस' में गांधीजी की इसी धारणा का एक तरह से कथानुवाद प्रस्तुत करते हैं। जब वह इब्राहिम अली से यह कहलवाते हैं कि ''........................उनकी विजय का सबसे उज्ज्वल चिह्न यह था कि, उन्होंने जनता की सहानुभूति प्राप्त कर ली थी। वही लोग, जो पहले उन पर हँसते थे, उनका धैर्य और साहस देखकर, उनकी सहायता के लिए निकल पड़े थे। मनोवृत्ति का यह परिवर्तन ही हमारी असली विजय है। हमें किसी से लड़ाई करने की जरूरत नहीं, हमारा उद्देश्य केवल जनता की सहानुभूति प्राप्त करना है, उसकी मनोवृत्तियों को बदल देना है। जिस दिन हम इस लक्ष्य पर पहुँच जायेंगे, उसी दिन 'स्वराज्य-सूर्य' उदय होगा।'' (जुलूस) गांधीजी, भय से मुक्ति की बात कह रहे थे और प्रेमचन्द मनोवृत्ति में परिवर्तन चाहते थे। गौर से विश्लेषण किया जाए तो निष्कर्ष साफ है कि, दोनों में कोई अंतर नहीं है। जुलूस के इब्राहिम अली स्वयं को घायलावस्था में पहुँचाकर भी खुश हैं कि, उन्होंने अपने आंदोलन को सफल कर लिया है, जबकि ऊपर से देखने पर, उनका जुलूस पुलिस द्वारा रोक दिया गया है। जनता जो पहले मूक-दर्शक थी, आंदोलन में सम्मिलित होने से डर रही थी, तरह-तरह की आशंकाऐं

व्यक्त कर रही थी, अचानक निर्भय होकर लाभ-लोभ छोड़कर आंदोलन में प्राणोत्सर्ग तक के लिए तैयार हो जाती है और वास्तव में यही आंदोलन की उपलब्धि है, जिसे प्रेमचंद ने कहानी में दिखाना चाहा है।

जुलूस में पुलिस के दारोगा बीरबल सिंह का हृदय-परिवर्तन भी दिखाया गया है। वस्तुतः प्रारम्भ में, प्रेमचंद भी गांधी जी की तरह मानते थे कि, मनुष्य में सद्‌वृत्तियों का जन्म हो सकता है। उसमें परिवर्तन होता है, इसलिए उसे सुधरने का अवसर मिलना चाहिए। बीरबल अपनी पत्नी के धिक्कारने पर ग्लानि अनुभव करता है और अपना मंतव्य प्रकट करता है कि, 'मुझे पता है कि यह देश और जाति के उद्धार का आंदोलन है।'

13.7 इब्राहिम अली : त्याग और सहिष्णुता का अनन्य उदाहरण

प्रेमचंद अपनी कहानियों में पात्रों/चरित्रों की भीड़ जमा नहीं करते हैं। दो-तीन पात्रों के माध्यम से वह कहानी कह जाते हैं और वह पात्रों का चरित्र-विकास सजग भाव से करते हैं। उनकी कहानियों का कोई भी पात्र अनावश्यक नहीं रखा गया है। पूस की रात, ठाकुर का कुँआ, बूढ़ी काकी आदि कहानियों की पात्र-योजना प्रमाण है। 'जुलूस' में थोड़े से पात्र हैं और वे कथा की दृष्टि से अपरिहार्य हैं। इब्राहिम अली कहानी का महत्वपूर्ण पात्र है। उसका व्यक्तित्व, प्रेमचन्द द्वारा विशेष रूप से सृजित है। वह शांति, अहिंसा जैसे ऊँचे नैतिक मानदण्डों का विश्वासी है। उसके व्यक्तित्व में दृढ़ता है। एक बार जुलूस आगे ले जाने का निर्णय करने के बाद इब्राहिम पीछे मुड़कर नहीं देखता है, चाहे पुलिस कैसा भी दमन-चक्र चलाए। पुलिस की लाठी से गंभीर चोट खाकर वह मरता है, लेकिन उसके मुँह से अपनी चोट के बारेमें कोई बात सुनाई नहीं पड़ती है। वह कष्ट-सहिष्णु, त्यागी, अहिंसा-सेवी, सच्चा देशभक्त है। उसके अन्दर गहरा आत्मिक तेज है। वह साम्प्रदायिक सौहार्द्र का हामी है। इब्राहिम अपने निजी स्वार्थों से ऊपर उठा हुआ है। कहानी के अंत में प्रेमचन्द संकेत करते हैं कि, उसके परिवार में उसकी पत्नी ही है, लेकिन एक बार भी वह यह नहीं सोचता है कि, उसके बाद उसकी पत्नी की देख-रेख कौन करेगा? आज तो स्थिति यह है कि, जिम्मेदार पदों पर बैठे हुए लोग, पीढ़ियों तक का इंतजाम कर जाने की नाजायज चिंता कर रहे हैं। ऐसे में उसका त्याग प्रभावित करता है। सूत्र रूप में यह कहा जा सकता है कि, इब्राहिम अली का व्यक्तित्व गढ़ते हुऐ प्रेमचन्द, गांधी जी के व्यक्तित्व को सामने रखते हैं। गांधीजी के व्यक्तित्व की खूबियों से प्रेमचन्द बहुत प्रभावित थे। 'रंगभूमि' का सूरदास भी ऐसा ही उदात्त चरित्र है।

प्रेमचन्द इब्राहिम अली के चरित्र के माध्यम से देश का नेतृत्व करने वाले व्यक्ति के चरित्र की खूबियों को उजागर कर रहे थे और यह बताना चाह रहे थे कि इस देश का नेता वही होगा, जिसके अंदर त्याग होगा, जो ऊँचे नैतिक मूल्यों वाला और जातियों/धर्मों से ऊपर उठा हुआ, राष्ट्रीय स्वीकृति वाला होगा। जैसा कि, गांधीजी ने अपने आचरण और सिद्धांतों के द्वारा दर्शाया था। नेतृत्व, प्रामाणिक और सर्वजन-स्वीकृत होने पर आंदोलन की सफलता की गारंटी होती है। ऐसे नेताओं की 'अपील' में बल होता है। 'जुलूस' कहानी के इब्राहिम अली अपनी चारित्रिक दृढ़ता से मरणोपरांत भी राष्ट्रीय आंदोलन में सारे शहर के लोगों को शामिल करके, उनकी मनोवृत्ति में परिवर्तन करने में सफल हो जाते हैं। मृत्यु के बाद समूचे शहर का उनके प्रति प्रकट आदर-भाव स्पृहणीय है - ''उनके मरने का समाचार फैलते ही सारे शहर पर मातम का पर्दा-सा पड़ गया। जो सुनता था, एक बार इस तरह चौंक पड़ता था। जैसे उसे गोली लग गयी हो और तुरंत उनके दर्शनों के लिए भागता था। सारे बाजार बंद हो गए, इक्को और तांगों का

कहीं पता न था जैसे शहर लुट गया हो। देखते-देखते सारा शहर उमड़ पड़ा। जिस वक्त जनाजा उठा, लाख-सवा लाख आदमी साथ थे। कोई आँख ऐसी न थी, जो आंसुओं से लाल न हो।'' (जुलूस) इब्राहिम का चरित्र शुद्ध अर्थ में राष्ट्रीय चरित्र है।

13.8 मिठ्ठनबाई : जुलूस का स्त्री-स्वर

मिठ्ठनबाई, दारोगा बीरबल सिंह की पत्नी है और कहानी की प्रमुख स्त्री-पात्र है। या यों कहें कि, वह भारत के स्वाधीनता-संघर्ष का स्त्री-स्वर है। भारत की स्त्रियाँ, स्वाधीनता-संघर्ष में मुखर थीं। वे संकोच छोड़कर, आंदोलनों में सक्रिय थीं। इसके लिए उन्हें काफी त्याग भी करना पड़ता था। मिठ्ठनबाई ऐसी ही दृढ़ निश्चयी, निडर, कट्टर राष्ट्रप्रेमी, स्वावलंबन-चेता स्त्री है। कहानी में उसका सर्वथा अलग और विशिष्ट व्यक्तित्व है। वह पति की परछाई नहीं है। पति के ग़लत कामों के प्रतिकार का साहस करने वाली स्त्री है। प्रेमचन्द की खूबी है कि, वह स्त्री-पात्रों को अत्यन्त सजग-भाव से निर्मित करते हैं। वह स्त्री-पात्र रचते हुए विशेष ध्यान रखते हैं। उनके साहित्य में तेजस्विनी स्त्रियों की प्रचुरता है। विलक्षण बात यह है कि, उनके स्त्री-पात्र समाज के चाहे जिस किसी भी स्तर के हों, उनका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व होगा और वे विवेकी होंगी। सही और ग़लत का हिसाब जानती होंगी और उच्चादर्शों से प्रेरित होंगी। 'पूस की रात' की मुन्नी, गरीब किसान की पत्नी है, लेकिन अपने पति से अधिक मुखर है। 'ठाकुर का कुँआ' की गंगी सामाजिक अत्याचार के खिलाफ प्रतिक्रिया करती है। 'रंगभूमि' की सुभागी, इंदु, रानी जाह्नवी, सोफिया, गोदान की धनिया आदि सबका अपना व्यक्तित्व है। प्रेमचन्द नारी पराधीनता के वास्तव को गहराई से जानते थे। सामाजिक-धार्मिक षड्यंत्रों में पिसती हुई नारी के प्रति, उनके अंदर गहरी सहानुभूति थी। साथ ही वह स्त्री-मुक्ति के प्रश्न को राष्ट्रीय स्वाधीनता से अभिन्न मानते थे। 'जुलूस' की मिठ्ठनबाई अपने पति के स्वराजवादियों पर किए गए अत्याचार से आहत है। वह विक्षुब्ध है कि, उसके पति के द्वारा ऐसा घृणित कार्य हुआ जो 'राष्ट्र-हित' के खिलाफ है। 'राष्ट्र-हित' उसके लिए 'स्व-हित' से बड़ा है। प्रेमचन्द ने अत्यन्त मार्मिक तरीके से उसकी मानसिक-व्यथा अंकित की है - पहली ही कतार में मिठ्ठनबाई नजर आईं। बीरबल को विश्वास न आया। फिर ध्यान से देखा, वही थी। मिठ्ठन ने उनकी तरफ एक बार देखा और आँखें फेर लीं, पर उसकी एक चितवन में कुछ ऐसा धिक्कार, कुछ ऐसी लज्जा, कुछ ऐसी व्यथा, कुछ ऐसी घृणा भरी हुई थी कि, बीरबल सिंह की देह में सिर से पाँव तक सनसनी सी दौड़ गयी। वह अपनी दृष्टि में कभी इतने हल्के, इतने दुर्बल, इतने जलील न हुए थे (जुलूस) मिठ्ठनबाई की आँखों में धिक्कार, लज्जा, व्यथा और घृणा के भाव एक साथ मौजूद हैं। यह एक शुद्ध ह्रदया भारतीय नारी के लिए दुःखदायी बात थी कि राष्ट्र-मुक्ति में अहिंसक भाव से लगे हुए देशवासियों पर उसके पति ने जुल्म किया है। उसके द्वारा एक राष्ट्रभक्त शहीद हुआ। स्त्री अपने पति के सुकर्मों से समाज में सिर ऊँचा करके चलती है और इसके विपरीत पति के घृणित कार्यों से वह लज्जित व लांछित होती है। मिठ्ठनबाई के इसी भाव-बोध को कहानी में अत्यल्प शब्दों के प्रयोग से व्यक्त किया गया है। शब्द गिनती के कुल चार जरूर हैं, लेकिन उनकी क्षमता मारक है। मिठ्ठबाई को प्रेमचन्द ने आंतरिक -वेदना से मुक्त होता भी दिखाया है। कहानी के अंत में जब दरोगा बीरबल सिंह प्रायश्चित के लिए इब्राहिम अली के घर उनकी विधवा स्त्री से मिलने जाता है, वहाँ मिठ्ठनबाई भी पहुँचती है और उससे पूछती है कि, तुम यहाँ कैसे आए? इसके उत्तर में उसके पति ने जो कुछ कहा है, वह उसे, उसकी व्यथा, लज्जा और घृणा से मुक्त करता है - ''बीरबल सिंह ने कहा - उसी तरह जैसे तुम आयीं। अपने अपराध क्षमा कराने आया हूँ।'' मिठ्ठन के गोरे मुखड़े पर आज गर्व, उल्लास और प्रेम की जो उज्ज्वल विभूति नजर आयी, वह अकथनीय

थी! ऐसा जान पड़ा, मानों उसके जन्म-जन्मांतर के क्लेश मिट गये हैं, वह चिन्ता और माया के बंधनों से मुक्त हो गयी है।'' (जुलूस) स्मरण कीजिए मिठ्ठनबाई की पूर्व - प्रतिक्रिया, जिसमें वह लज्जा, व्यथा और घृणा से भरी हुई है और उत्तर-प्रतिक्रिया जहाँ वह गर्व से सिर ऊँचा करके समाज में रह सकती है, जहाँ व्यथा की जगह उल्लास है और घृणा की जगह प्रेम। पति के प्रायश्चित से वह मानसिक-द्वन्द्व से मुक्त हो जाती है। मानों उसका बोझ उतर जाता है।

मिठ्ठन का व्यक्तित्व, स्वावलम्बन की चेतना से संपन्न है। जब वह अपने पति का घर छोड़ने की जद्दो-जहद में है, उसे अपने सामने भविष्य की चिंता सताती है, इसी प्रसंग में वह स्व-निर्भर रहने का संकल्प करती है। प्रेमचंद जानते थे कि, स्त्री की वास्तविक आजादी, आर्थिक आजादी ही है। तभी तो उन्होंने मिठ्ठनबाई के मुख से कहलवाया कि - ''नहीं मैं किसी की आश्रित नहीं बनूंगी। क्या मैं अपने गुजर-बसर को भी नहीं कमा सकती?'' (जुलूस) मिठ्ठनबाई, के चरित्र के माध्यम से प्रेमचन्द स्वाधीनता-आंदोलन को 'स्त्री-मुक्ति' का स्वर प्रदान करते हैं।

13.9 जुलूस : शिल्प-कौशल

प्रेमचंद, की कहानियाँ, शिल्प की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। किसी भी बड़े रचनाकार की सफलता में उसके 'कथ्य-प्रस्तुति' का तरीका निश्चित रूप से बड़ा भारी योगदान देता है। यह बात प्रेमचंद पर शत-प्रतिशत लागू होती है। आकार-प्रकार में बहुत छोटी दिखने वाली उनकी कहानियाँ, प्रभाव की दृष्टि से चमत्कारी हैं। पाठक के मर्म पर सीधा असर डालती हैं। उसे बदल डालने का माद्दा रखती हैं। सामान्य पाठक से लेकर गंभीर पाठक तक पर यह प्रभाव दीर्घकालिक और स्थायी होता है। पाठक-गण, प्रेमचंद की कहानियों, उपन्यासों के पात्रों के नाम आसानी से बता जाते हैं। बहुत बार उनको, कहानियाँ याद रहती हैं। यह किसी भी रचनाकार के लिए विशिष्ट उपलब्धि है। ऐसा हर रचनाकार के साथ नहीं होता है। किंतु यह उपलब्धि सरलता से प्राप्त नहीं होती है। इसके लिए साधना करनी पड़ती है। प्रेमचंद का, शिल्प का अपना निश्चित दर्शन है। उसी के अनुसार वह भाषा और शैली गढ़ते हैं। भाषा के बारे में उनकी स्पष्ट राय है कि, ''ऐसी ज़बान, जिसके लिखने और समझने वाले थोड़े से पढ़े-लिखे लोग ही हों, मसनई, बेजान और बोझल हो जाती है। जनता का मर्म-स्पर्श करने की, उन तक अपना पैग़ाम पहुँचाने की उसमें कोई शक्ति नहीं रहती।'' (प्रेमचन्द : कुछ विचार, पृ. 76-77) थोड़े से शिक्षित समाज में ही इस्तेमाल होने वाली भाषा, प्रेमचन्द के लिए उपयोगी नहीं है, क्योंकि उन्हें एक जीवित और गतिशील भाषा की आवश्यकता थी, जिससे वह सामान्य जनता तक अपनी बात पहुँचा सकते थे। इसके लिए 'एलीट भाषा' (अभिजात भाषा) अनुपयोगी थी। क्योंकि सामान्य-जन का आग्रह सरलता, स्वाभाविकता और सजीवता पर रहता है। इसीलिए उनकी भाषा भी सजीव और सरल होती है और उसकी संप्रेषण की ताक़त अनुमान से परे होती है। यह बात प्रेमचंद बाखूबी जानते हैं। तभी उन्होंने बहुत सोच-समझकर ऐसी भाषा का चयन किया, जो आसानी से सबकी समझ में आ जाती है और जो स्वाभाविक है। 'जुलूस' की भाषा का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि, प्रेमचंद ने अपनी उक्त भाषा-दृष्टि का ही परिचय दिया है– ''जुलूस शहर की मुख्य सड़कों से गुजरता हुआ चला जा रहा था। दोनों और छतों, पर छज्जों पर, जंगलों पर, वृक्षों पर, दर्शकों की दीवारें-सी खड़ी थीं। बीरबल सिंह को आज उनके चेहरों पर एक नयी स्फूर्ति, एक नया उत्साह, एक नया गर्व झलकता हुआ मालूम होता था। स्फूर्ति थी, वृक्षों के चेहरे पर, उत्साह युवकों के और गर्व रमणियों के। यह स्वराज्य के पथ पर चलने का उल्लास था। अब उनको यात्रा का लक्ष्य अज्ञात न था, पथ-भ्रष्टों की भाँति इधर-उधर भटकना न था, दलितों की

भाँति सिर झुकाकर रोना न था। स्वाधीनता का सुनहरा शिखर सुदूर आकाश में चमक रहा था। ऐसा जान पड़ता था कि लोगों को बीच के नालों और जंगलों की परवाह नहीं है। सब उस सुनहले लक्ष्य की ओर पहुँचने के लिए उत्सुक हो रहे हैं।'' (जुलूस) उद्‌घृत अंश, प्रेमचंद के भाषा-कौशल का प्रमाण प्रस्तुत करता है। सरल वाक्य-विन्यास हैं। शब्दों का नियोजन उपयुक्त है। अवसर की माँग के हिसाब से है। तत्सम् शब्द भी प्रयुक्त हैं, लेकिन आसानी से समझ में आने वाले। प्रायः प्रेमचन्द तत्सम शब्दों के ढेर-ढेर इस्तेमाल से बचते हैं, लेकिन जहाँ वे कवि हो जाते हैं वहाँ उनकी भाषा में स्पष्ट परिवर्तन लक्ष्य किया जा सकता है। उद्‌घृत अंश जिसमें वह स्वाधीनता-संघर्ष में शामिल देशवासियों के जाग्रत स्वाभिमान और उत्साह को बताना चाहते हैं, अभिव्यक्ति तरल और कवित्वमय हो जाती है। वर्णन एकदम स्वाभाविक रीति से हुआ है, यह भाषिक सारल्य से संभव हुआ है। ऐसा वर्णन करते हैं कि, पाठक के सामने एक चित्र उभरने लगता है। भाषा में बिंब निर्मित करने की सामर्थ्य है। 1930 में भारत में जनता का अपनी आजादी के संघर्ष के दौरान कैसा 'मूड' रहा होगा। 'जुलूस' पढ़कर आसानी से समझा जा सकता है। यदि कोई इतिहासकार तत्कालीन घटनाक्रम लिखेगा तो उसे बहुत से तथ्य देने होंगे। अधिक लिखना होगा तब कहीं वह समझा पाएगा कि, उस समय सामान्य भारतीय की मनःस्थिति कैसी थी? इस बात को कहानीकार आसानी से प्रकट कर देता है। प्रेमचंद की भाषा सरल होते हुए भी कई सारी खूबियों से सम्पन्न है। उदाहरण के लिए, भाषा में आलंकारिक स्पर्श आसानी से ढूँढा जा सकता है। सादृश्य-विधान करने में, प्रेमचन्द का कोई सानी नहीं है। 'जुलूस' के ऊपर उद्‌धृत अंश को ग़ौर से देखिए ज्ञात हो जाएगा। जुलूस में भीड़ उमड़ी हुई है, इसे पाठकों को बताने के लिए, प्रेमचंद लिखते हैं, दोनों और छतों पर, छज्जों पर, जंगलों पर, वृक्षों पर, दर्शकों की दीवारें-सी खड़ी थीं। स्वतंत्रता संग्राम में सम्मिलित भारतीय उल्लसित हैं, उत्साही हैं, गर्वित हैं और स्फूर्ति का भाव अनुभव कर रहे हैं। यह तो समझ में आता है कि स्फूर्ति थी, वृक्षों के चेहरे पर, यह सामान्य वाक्य नहीं है। भारत का स्वाधीनता संग्राम कितना यथोचित, काम्य और जरूरी है? प्रकृति के स्फूर्ति अनुभव करने से पता चलता है। यहाँ प्रकृति का मानवीकरण करके उन्होंने भारतीय स्वाधीनता के आंदोलन को व्यापक 'मुक्ति-आंदोलन' के रूप में प्रस्तुत किया है।

प्रेमचन्द का भाषा-कौशल, एक और मामले में अनूठा है, वह है अपने पात्रों की विविध सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को सम्यक् उभारना। हिंदू-मुसलमान, ऊँचे-नीचे, अवर्ण-सवर्ण और बुरे-भले, स्त्री-पुरुष सब तरह के पात्र अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक विशेषताओं के साथ प्रामाणिक तरीके से कहानीकार गढ़ता है। उर्दू, हिंदी, अरबी, फारसी, संस्कृत, अंग्रेजी आदि भाषाओं, यहाँ तक कि, बोलियों (ब्रज, अवधी, भोजपुरी आदि) के शब्द भी आवश्यकतानुसार उनकी कहानियों में जगह पाते हैं। 'जुलूस' के इब्राहिम अली, बीरबल सिंह, मैकू, शंभूनाथ, दीनदयाल, मिठ्ठनबाई पाठक के सामने कहानी के पात्र के रूप में नहीं बल्कि सप्राण मनुष्यों के रूप में परिलक्षित होते हैं। इन सभी पात्रों के सामाजिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक और आर्थिक स्तर भिन्न-भिन्न हैं। यह भिन्नता, प्रेमचंद के लिए कठिनाई पैदा नहीं करती है। वह समाज की बहु-स्तरीयता से परिचित थे और उनके पास अपूर्व भाषा-कौशल था। प्रेमचंद की कहानियों में व्यंग्य और सूक्तियाँ भी प्रचुरता से उपलब्ध हैं। बड़ी से बड़ी बात को बहुत संक्षेप में और कहानी की माँग के अनुसार कहना हो तो वह आसानी से कह जाते हैं।

शैली - प्रेमचन्द कहानियों की शैली के मामले में हिंदी के शेष कथाकारों में विशिष्ट हैं। वह अपनी शैली भारत की कथा-साहित्य की जातीय परंपरा से ग्रहण करते हैं। 'लोक-मन' और 'लोक-भूमि' से आत्मीय संबंध, प्रेमचंद की थाती है। वह निश्छल और अकृत्रिम

जन-सामान्य के संसार से अपने लिए शक्ति खोजते हैं। कथ्य, भाषा, और शैली की ताज़गी, स्वाभाविकता, प्रामाणिकता के लिए वह लोक में गहरे पैठते हैं। भारतवर्ष में बहुत पुराने-समय से कहानी कहने का अंदाज प्रचलन में रहा है। यह कहानी कहने की लोक-शैली है, जिससे प्रेमचंद कहानी कहना सीखते हैं। वह भी बहुत आराम से और निश्चिंत भाव से अपने पाठकों को अपनी कहानियों के संसार में धीरे-धीरे उतरने का मौका देते हैं। प्रेमचंद का पाठक, उनकी कहानियों को पढ़ते हुए 'इन्वाल्व' होता है। यह कहानीकार का लक्ष्य होता है। पाठक कहानी पढ़ते हुए स्वयं को भूल जाता है। डॉ. रामविलास शर्मा जी ने प्रेमचंद की शैली की इन्हीं खूबियों को इस प्रकार रेखांकित किया है–''भारतीय कथा साहित्य की जातीय परंपरा से प्रेमचंद की कहानियों का घनिष्ठ संबंध है। कहानी फुरसत की चीज है, काम-धाम से छुट्टी पाकर सुनने की चीज और जल्दबाजी में काम बिगड़ जाता है। प्रेमचंद के कहानी कहने में वह फुरसत का भाव मिलता है। वह कहानी सुनाते हैं अक्सर लच्छेदार जबान में, वाक्यों को स्वाभाविक अंदाज में फैलने की आजादी देकर, अंग्रेजी बाग के माली की तरह उनकी डालियों और पत्ते कतरकर नहीं, फूलों और पंत्तियों को हवा में बढ़ने और लहराने की आजादी देकर। ज़िंदगी के अनुभवों पर टीका-टिप्पणी भी साथ चला करती है, व्यंग्य, अनूठी उपमाएँ और हास्य बीच-बीच में पाठक को गुदगुदाते रहते हैं।'' (प्रेमचंद और उनका युग, पृष्ठ 111) 'जुलूस' पढ़ते हुए, रामविलास जी द्वारा कही गई एक-एक विशेषता सत्यापित होती जाएगी। वह वर्णन करते हैं। स्वाभाविक और रोचक तरीके से। पाठक कहानी के अंत तक सम्मोहित अवस्था में रहने को विवश होता है। वर्णन-शैली, विस्तार की माँग करती है। इसमें एक-एक चीज साफ-साफ और अलग से दिखनी चाहिए। प्रेमचंद यही करते हैं। जब कहानी कहते हैं तो, विस्तार से घटना और पात्रों के रहस्य की परतें खोलते जाते हैं। घटनाऐं सजीव रूप में सामने आती हैं और उनके चरित्र अपनी तमाम सारी ख़ामियों और खूबियों के साथ उभरने लगते हैं। चूँकि, प्रेमचंद साहित्य को 'जीवन-सत्य से अटूट संबंध वाला मानते हैं, इसलिए वह कहानियों के बीच-बीच में जीवन के ठेठ अनुभवों को भी संयोजित करते हुए चलते है।

व्यंग्य, उपमा-विधान और हल्के-फुल्के हास्य की योजना उनकी कहानियों को बोझिल होने से बचाती है। प्रेमचंद एक सिद्ध कलाकार की तरह ही अपनी कहानियों के रूप और उसके रचाव को सँभालते हैं। जहाँ वह ऐसा नहीं कर पाते हैं, उनकी कहानियाँ कमजोर हो जाती हैं।'

13.10 सारांश

'जुलूस' कहानी के विश्लेषण और मूल्यांकन के बाद प्राप्त निष्कर्षों को सूत्र रूप में निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है–

1. कहानी, भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की पृष्ठभूमि में लिखी गई है और आंदोलन की भारतीय समाज में व्याप्ति का परिचय उपस्थित करती है। आंदोलन शुद्धतः एक व्यापक जनांदोलन था, जिसमें किसान, मजदूर, शिक्षित, अशिक्षित, श्रमिक, बूढ़े, बच्चे और स्त्रियाँ सबकी रचनात्मक भूमिका थी। तथाकथित उच्च वर्ग के लोगों की भूमिका संदिग्ध अवश्य थी।

2. भारतीय स्वाधीनता आंदोलन उच्च नैतिक मानदण्डों के आधार पर संचालित हो रहा था। त्याग, अहिंसा, सत्य और न्याय को केंद्रीय मानकर यह संघर्ष संचालित हो रहा था।

3. इब्राहिम अली के चरित्र की दृढ़ता प्रभावकारी है। वह मरणासन्न स्थिति में भी 'अहिंसा' के मूल्य की रक्षा के लिए चिंतित हैं। उनका व्यक्तित्व सांप्रदायिक सद्भाव की मिसाल है।

4. कहानी का स्त्री-चरित्र मिठ्ठनबाई का अंतर्द्वन्द्व मार्मिक तरीके से चित्रित है। साथ ही, उसका तेजस्वी चरित्र हमारे सामने भारतीय स्त्री का आदर्श प्रस्तुत करता है।

5. कहानी का शिल्प-पक्ष महत्वपूर्ण है। भाषा और शैली की शक्ति, प्रेमचन्द को महान कहानीकार बनाती है। उनके शिल्प की विलक्षणता यह है कि,

पाठक उनकी कहानियों की भाषा और शिल्प से चौंकता नहीं है, अत्मीयता अनुभव करता है। शिल्प, पहचाना सा लगता है। शैली के रूप में किस्साग़ोई का पारम्परिक तरीका और भाषा के स्तर पर जाने-पहचाने शब्द, प्रेमचंद की कहानियों का शिल्प-कौशल है।

13.11 अभ्यास

1. 'जुलूस' कहानी भारतीय स्वाधीनता संघर्ष का कथानुवाद है। यह कहना कहाँ तक उचित है? अपने विचार लिखिए।

2. 'जुलूस' सांप्रदायिक-सद्भाव की कहानी है। सिद्ध कीजिए।

3. 'जुलूस' कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

4. भारत का स्वाधीनता-संघर्ष एक जनांदोलन था। 'जुलूस' के आधार पर समझाइए।

5. मिठ्ठनबाई के चरित्र की विशेषताएँ बताइए।

6. इब्राहिम के चरित्र के उज्ज्वल पक्षों पर टिप्पणी कीजिए।

7. 'जुलूस' कहानी पर गांधीवाद का प्रभाव समझाइए।

8. 'जुलूस' कहानी का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।

9. 'जुलूस' के शिल्प की विशेषताएँ रेखांकित कीजिए।

10. निम्नलिखित पर टिप्पणी कीजिए—

    (1) जुलूस की भाषा

    (2) जुलूस की संवाद-योजना

    (3) जुलूस की शैली

    (4) कहानीकार प्रेमचंद

इकाई 14 "समर-यात्रा" : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 कहानी-कला के आलोक में 'समर-यात्रा'

14.2.1 कथानक और कथा-प्रवाह की दृष्टि से

14.2.2 शिल्प की दृष्टि से

14.3 महात्मा गाँधी और उनके सत्याग्रह का प्रभाव

14.3.1 निजी जीवन पर

14.3.2 समाज पर

14.4 स्वाधीनता-आंदोलन का सजीव दस्तावेज

14.5 समाज के बीच की नायिका : नोहरी

14.6 भाषा और शब्दावली

14.7 'समर-यात्रा' का मर्म और संवेदना

14.8 समर-यात्रा : देशप्रेम और राष्ट्रीय चेतना का प्रतिदर्श

14.9 सारांश

14.10 अभ्यास

14.0 उद्देश्य

यह एम.ए. हिंदी के द्वितीय वर्ष के कहानी से संबंधित माड्यूल के पाठ्यक्रम 'प्रेमचंद की कहानियाँ' के खंड - 3 की पाँचवीं और पाठ्यक्रम की चौदहवीं इकाई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप देशप्रेम और राष्ट्रीय चेतना से संबंधित प्रेमचंद की धारणा समझ सकेंगे/सकेंगी। प्रस्तुत इकाई में आप प्रेमचंद की कहानी 'समर-यात्रा' का अध्ययन करेंगे/करेंगी। इस कहानी में देश के स्वाधीनता-संग्राम में महात्मा गाँधी के सत्याग्रह के प्रभाव का दृश्यांकन किया गया है, जिससे तत्कालीन भारत की तस्वीर भी सजीव हो उठती है और कहानी देशप्रेम और राष्ट्रीय चेतना का प्रतिदर्श बन जाती है। इस कहानी का अध्ययन करने के उपरांत आप—

- इस कहानी के माध्यम से प्रेमचंद के मन में सिमटे हुए परतंत्रता के दर्द को गहराई से समझ सकेंगे तथा देश की स्वतंत्रता के परिप्रेक्ष्य में गाँधी जी के सत्याग्रह के प्रभाव को महसूस कर सकेंगे/सकेंगी;
- 'समरयात्रा' कहानी के कथानक के माध्यम से यथार्थ के धरातल पर निर्मित देश की स्वतंत्रता की समस्या को सुलझाने की दिशा में सार्थक प्रयास की पहल देख सकेंगे/सकेंगी;
- वृद्धा नोहरी के चरित्र के जरिए संवेदना, करुणा एवं मानवता के मार्मिक दृश्यों का चाक्षुष आस्वादन कर सकेंगे/सकेंगी;

- सामाजिक विडंबनाओं के बीच वृद्धा नारी की असहाय स्थिति को समझ सकेंगे/सकेंगी; और
- प्रेमचंद की भाषा और शब्दावली की विभिन्न छटाओं के दर्शन कर सकेंगे/सकेंगी।

14.1 प्रस्तावना

प्रेमचंद की कहानियों में साहित्यिक-सामाजिक-दार्शनिक विचारधाराएँ, राष्ट्रीय चेतना, किसानों का जीवन, नारी-जीवन, दलित चेतना, धार्मिक-सांप्रदायिक सोच, घर-परिवार-समाज आदि विविधतापूर्ण विषयों को उठाया गया है। प्रेमचंद ने राष्ट्रीय चेतना को दृष्टिगत रखते हुए ढेर सारी कहानियाँ लिखीं हैं। महात्मा गाँधी और उनके सत्याग्रह के आधार पर 1921 ई. को विभाजन-रेखा का वर्ष मानते हुए प्रेमचंद की कहानियों को दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है। 1921 ई. के पहले की 'उपदेश', 'सेवामार्ग', 'पशु से मनुष्य' और 'मृत्यु के पीछे' जैसी प्रेमचंद की कहानियों में दबे स्वर में देशप्रेम के भाव की अभिव्यक्ति हुई है; किंतु बाद की कहानियों में स्वाधीनता-आंदोलन के खुले चित्रण ने देशप्रेम और राष्ट्रीय चेतना के महत्त्व को रेखांकित किया है। इन कहानियों में 'अजीब होली', 'अधिकार-चिंता', 'आदर्श विरोध', 'इस्तीफा', 'चकमा', 'त्यागी का प्रेम', 'दुस्साहस', 'बौड़म', 'माँ', 'लागडाट', 'लाल फीता', 'सत्याग्रह', 'सुहाग की साड़ी', 'स्वत्व-रक्षा' और 'हार की जीत' के नाम विशेष रूप से लिए जा सकते हैं।

'समरयात्रा' का पहला प्रकाशन हिंदी की मासिक पत्रिका 'हंस' में सन् 1930 के अप्रैल माह में हुआ था। अमृत राय द्वारा संपादित 'मानसरोवर' के सातवें भाग में संगृहीत यह कहानी भारतीय स्वाधीनता-आंदोलन की एक झलक का चित्रण करती है।

इस कहानी में आदर्श, उपदेश एवं फंतासी का मिश्रण है। एक अनाम गाँव की ऐसी सुबह के चित्रण से कहानी का आरंभ होता है, जिसमें ''कच्ची झोपड़ियाँ हँसती हुई जान पड़ती थीं।'' क्योंकि गाँव में सत्याग्रहियों का जत्था जो आने वाला था। 75 वर्षीय विधवा महिला नोहरी इस कहानी का केंद्रीय चरित्र है, जो कभी संपन्न व भरे-पूरे परिवार वाली थी, परंतु अब वह विपन्न व नितांत अकेली है। दूसरी ओर कोदई चौधरी के दिन बहुर चुके हैं, इसीलिए अब नोहरी की जगह कोदई की ही पूछ है। कोदई द्वारा जलसे में आमंत्रित किया जाना भी नोहरी को दंश देता है।

स्वराज्य-प्रेमी खद्दरधारी कौमी तराना गाते यात्रियों का दल गाँव पहुँचता है तो गाँव वालों के साथ-साथ नोहरी भी राष्ट्रीय चेतना से भावाभिभूत हो उठती है। सत्याग्रहियों के दल के अनाम नायक द्वारा कई गाँवों की जमा भीड़ को देश की तत्कालीन दशा और देशवासियों की दुर्दशा के कारणों पर प्रकाश डाला जाता है। नायक के उपदेश का प्रभाव ग्रामीणों पर पड़ता है। पुलिस के आने पर प्रतिरोध होता है, किंतु अहिंसात्मक; और अंततः कोदई चौधरी को गिरफ्तार करने में पुलिस सफल हो जाती है।

पुलिस के जाने के उपरांत सत्याग्रह हेतु पाँच लोग सत्याग्रहियों के दल में शामिल हो जाते हैं। कोदई चौधरी के दोनों पुत्रों मैकू और गंगा में सत्याग्रहियों के दल में शामिल होने की होड़ लग जाती है, तब दोनों नोहरी से निर्णय की माँग करते हैं। इस पर नोहरी अपना निर्णय कोदई के छोटे पुत्र गंगा के पक्ष में देती है। नाटकीय मोड़ तब आता है, जब नोहरी भी घर-बार और गाँव छोड़कर सत्याग्रहियों के साथ चल पड़ती है। इस प्रकार राष्ट्रीयता की भावना को जगाकर कहानी समाप्त हो जाती है। देशप्रेम की दृष्टि से यह कहानी सदैव प्रासंगिक बनी रहेगी।

14.2 कहानी-कला के आलोक में 'समर-यात्रा'

'समर-यात्रा' के साथ प्रेमचंद की कहानी-कला परिपक्वता की ओर बढ़ रही थी। उन्होंने देश की गुलामी की टीस को महसूस किया था। गाँधी जी के असहयोग आंदोलन और सत्याग्रह रूपी हथियार से वे बड़ी गहराई तक प्रभावित थे। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह आदि की शिक्षा उन्हें तॉलस्तॉय से मिल चुकी थी। जून 1908 ई. में प्रकाशित उनके राष्ट्रीय चेतना से भरपूर प्रथम उर्दू कहानी-संग्रह 'सोज-ए-वतन' के 1909 ई. में तत्कालीन सरकार द्वारा जब्त किए जाने के बाद से ही सरकारी नौकरी में वे अपने-आप को असहज पा रहे थे। समसामयिक राजनीति में उनकी रुचि जीवनपर्यंत बनी रही। महात्मा गाँधी के राजनीतिक दर्शन से वे इतने प्रभावित हुए कि 15 फरवरी 1921 ई. को सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। गाँधी जी का सत्याग्रह केवल प्रेमचंद के ही नहीं, बल्कि जैनेंद्र जैसे अन्य कथाकारों के सिर चढ़कर बोल रहा था। इसी के परिणामस्वरूप प्रेमचंद ने शब्दों के माध्यम से सत्याग्रह के पथ पर 'समर-यात्रा' आरंभ की। आइए! कहानी-कला की दृष्टि से आलोच्य कहानी का विश्लेषण करें।

14.2.1 कथानक और कथा-प्रवाह की दृष्टि से

'समर-यात्रा' आलोच्य कहानी का सटीक शीर्षक है। सत्याग्रह का मार्ग सरल नहीं है। वस्तुतः सत्याग्रह करना भी एक प्रकार का समर अर्थात् संघर्ष है। अहिंसा के रास्ते पर चलते हुए देश को स्वतंत्र करवाने का बीड़ा उठाना भी सबके वश की बात नहीं थी। कथ्य बस इतना है कि ग्रामीण लोग सत्याग्रहियों से प्रभावित होकर देश के प्रति अपने दायित्व के बोध को पहचान कर उनके साथ चल पड़ते हैं और यहाँ तक कि 75 साल की बुढ़िया भी अपना सर्वस्व न्योछावर करने हेतु तत्पर होकर सत्याग्रहियों के संग हो लेती है। और बस इतनी-सी कथावस्तु को प्रेमचंद की सर्जना-कला ने एक अच्छी-खासी कहानी में ढाल दिया। इस कहानी का कथा-प्रवाह एक झरने के समान एक निश्चित गति से निर्बाध रूप से चरमोत्कर्ष की ओर निरंतर अग्रसर रहता है।

कहानी के कथोपकथन समसामायिक और पात्रानुकूल बन पड़े हैं। बड़ी ही चतुराई से एक संवाद के माध्यम से आलोच्य कहानीकार 'समर-यात्रा' कहानी का उद्देश्य पाठकों के समक्ष उद्घाटित कर देता है– "यही तो आपका भ्रम है। आप ही की गर्दन पर इतना बड़ा राज्य थमा हुआ है। आप ही इन बड़ी-बड़ी फौजों, इन बड़े-बड़े अफसरों के मालिक हैं; मगर फिर भी आप भूखों मरते हैं, अन्याय सहते हैं। इसलिए कि आपको अपनी शक्ति का ज्ञान नहीं। यह समझ लीजिए कि संसार में जो आदमी अपनी रक्षा नहीं कर सकता, वह सदैव स्वार्थी और अन्यायी आदमियों का शिकार बना रहेगा! आज संसार का सबसे बड़ा आदमी अपने प्राणों की बाजी खेल रहा है। हजारों जवान अपनी जानें हथेली पर लिए आपके दुःखों का अंत करने के लिए तैयार हैं। जो लोग आपको असहाय समझकर दोनों हाथों से आपको लूट रहे हैं, वह कब चाहेंगे कि उनका शिकार उनके मुँह से छिन जाए। वे आपके इन सिपाहियों के साथ जितनी सख्तियाँ कर सकते हैं, कर रहे हैं; मगर हम लोग सब कुछ सहने को तैयार हैं। अब सोचिए कि आप हमारी कुछ मदद करेंगे? मर्दों की तरह निकलकर अपने को अन्याय से बचाएँगे या कायरों की तरह बैठे हुए तकदीर को कोसते रहेंगे? ऐसा अवसर फिर शायद कभी न आए। अगर इस वक्त चूके, तो फिर हमेशा हाथ मलते रहिएगा। हम न्याय और सत्य के लिए लड़ रहे हैं; इसलिए न्याय और सत्य के हथियारों से लड़ना है। हमें ऐसे वीरों की जरूरत है, जो हिंसा और क्रोध को दिल से निकाल डालें और ईश्वर पर अटल विश्वास रखकर धर्म के लिए सब कुछ झेल सकें! बोलिए आप क्या मदद कर सकते हैं?"

इससे यह भी तय है कि प्रेमचंद की संवेदना निश्चित रूप से भारतीय समाज और विशेषकर नारी की स्थिति के साथ है। उनकी संवेदनशीलता विधवा, असहाय और वृद्ध स्त्रियों के प्रति अधिक है, एक बार फिर यह बात उन्होंने इस कहानी में नोहरी नामक चरित्र को गढ़कर प्रमाणित किया है। एक स्थल पर कथानक की एकसूत्रता में थोड़ी कमी जरूर दिखाई पड़ती है। छह भागों में विभाजित 'समर-यात्रा' कहानी के पाँचवें भाग में सत्याग्रहियों के साथ जाने के मुद्दे पर प्रेमचंद लिखते हैं कि ''गंगा ने नोहरी के चरण छुए, फिर भाई से गले मिला और बोला– कल दादा को कहला भेजना, मैं जाता हूँ।'' जबकि छठवें भाग में पुनः प्रेमचंद लिखते हैं– ''सहसा नोहरी लाठी टेकती हुई आकर खड़ी हो गई। मैकू ने कहा– काकी, हमें आशीर्वाद दो। नोहरी– मैं तुम्हारे साथ चलती हूँ बेटा– कितना आशीर्वाद लोगे?'' यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि पाँचवें भाग में सत्याग्रहियों के साथ कोदई चौधरी के छोटे बेटे गंगा के जाने की बात होती है जबकि अगले और अंतिम भाग में गंगा की जगह बड़े बेटे मैकू का नाम लिया गया है।

कुछ भी हो, प्रेमचंद की अन्य कहानियों की तरह 'समर-यात्रा' के पात्रों का चारित्रिक उभार उनके संवादों, मनोभावों और घटनाओं के उतार-चढ़ाव के साथ होता है तथा कहानी के विभिन्न उद्देश्य देशकाल और वातावरण के संग गुंफित होकर कथ्य के आधार पर प्रेमचंद की कहानी-कला को नई ऊँचाई प्रदान करते हैं।

14.2.2 शिल्प की दृष्टि से

1913 ई. तक आते-आते प्रेमचंद उर्दू से हिंदी की ओर आने लगे थे और उनकी शिल्पगत तकनीक का उन्नयन शनैः-शनैः होने लगा था। अपनी लेखन-शैली के बारे में प्रेमचंद का कहना है कि ''मेरे ऊपर किसी विशेष लेखक की शैली का प्रभाव नहीं पड़ा। बहुत कुछ पं. रतननाथ दर लखनवी और कुछ डॉ. रवींद्रनाथ ठाकुर का असर है।'' ('समर लोक' त्रैमासिकी, जनवरी-मार्च 2005, पृ. 65)। उनकी वर्णनात्मकता की तकनीक और इस हेतु प्रयुक्त भाषा में भी अपेक्षित परिमार्जन दिखाई पड़ता है। इसमें कल्पनाशील लच्छेदार शब्दावली का उपयोग कहानी को फंतासी का रूप देने के लिए किया गया है। पात्रों की मानसिकता और उनके परिवेश के अनुरूप लौकिक एवं यथार्थपरक भाषा का प्रयोग अधिक हुआ है। प्रायः सपाट वाक्यों, सटीक कथनों और वर्णन से ही दृश्य निर्मित किए गए हैं; चाहे वे स्वराज्य के हों या फिर परतंत्रता की पीड़ा के। समर और यात्रा का राज कहानी में आरंभ से अंत तक अंतर्द्वंद्व को बनाए रखता है, जिससे कहानी की रोचकता बढ़ जाती है। कहा जा सकता है कि कथ्य और शिल्प दोनों ही स्तरों पर प्रेमचंद की कहानी-कला में 'समरयात्रा' तक पर्याप्त परिमार्जन हो चुका था।

14.3 महात्मा गाँधी और उनके सत्याग्रह का प्रभाव

'सोज-ए-वतन' से ही यह सिद्ध हो जाता है कि प्रेमचंद के मन में पराधीनता की कसक थी। 'सोज-ए-वतन' की जब्ती के बाद भी वे लेखन का खतरा उठाते रहे। तब महात्मा गाँधी भारत में नहीं थे। 1915 ई. में दक्षिण अफ्रीका से लौटने के उपरांत गाँधी जी भारतीय राजनीति में सक्रिय हुए और उनके असहयोग व सविनय अवज्ञा आदि आंदोलनों ने संघर्ष की दिशा ही बदल डाली। आइए यह देखें कि आलोच्य कहानी के आधार पर महात्मा गाँधी के राजनीतिक दर्शन का प्रभाव व्यक्ति, समाज और राष्ट्र पर क्या व कैसे पड़ा।

14.3.1 निजी जीवन पर

मानव का स्वभाव है कि यदि शांति से काम चल सकता हो, तो संघर्ष और हिंसा से दूर रहता है। गाँधी जी का अहिंसात्मक आंदोलन का प्रयोग दक्षिण अफ्रीका में सफल हो

चुका था, इसीलिए स्वदेश में जब उन्होंने अहिंसा, असहयोग और सत्याग्रह को हथियार बनाया, तो ये निरंतर लोकप्रिय होते गए। भारतीय जनता पर इस जादू के चलने के साथ ही प्रेमचंद जैसे लोग भी अंतर्मन की गहराई तक इस दर्शन से जुड़ गए और इसके फलवरूप उनके लेखन में यह दर्शन प्रमुख भूमिका में आ गया। इसकी बानगी हम इसी कहानी के बिंदा नामक चरित्र से ले सकते हैं– ''आज सत्याग्रहियों का जत्था गाँव में आएगा। कोदई चौधरी के द्वार पर चँदोवा तना हुआ है। आटा, घी, तरकारी, दूध और दही जमा किया जा रहा है। सबके चेहरों पर उमंग है, हौसला है, आनंद है। वही बिंदा अहीर, जो दौरे के हाकिमों के पड़ाव पर पाव-पाव भर दूध के लिए मुँह छिपाता फिरता था, आज दूध और दही के दो मटके अहिराने से बटोर कर रख गया है।'' कहना न होगा कि लोगों के निजी जीवन पर सत्याग्रह का व्यापक प्रभाव पड़ा था। सत्याग्रहियों के जत्थे के नायक के रूप में वस्तुतः प्रेमचंद स्वयं उपस्थित हैं और निजी जीवन पर सत्याग्रह के प्रभाव को रेखांकित करते हैं।

14.3.2 समाज पर

व्यक्ति समाज की न्यूनतम इकाई है, इसलिए उसके प्रभावित हुए बिना समाज और राष्ट्र अछूते रह जाते। प्रस्तुत कहानी में खींचे गए सत्याग्रह के दृश्य भले ही काल्पनिक लगते हों, किंतु सच तो यही है कि गाँधी जी ने अपने राजनीतिक दर्शन को स्वदेशी और स्वराज्य के माध्यम से ऐसा जोड़ा था कि गाँव-शहर स्थित हर प्रकार के समाज इस आँधी में उड़ चले। 'समरयात्रा' में यही दिखाने का प्रयास किया गया है– ''कोदई के द्वार पर मशालें जल रही थीं। कई गाँवों के आदमी जमा हो गए थे।''

पुलिस के आने पर गाँव वाले पहले तो दुम दबाकर भागते हैं, किंतु नोहरी की ललकार सुनकर वापस आ जाते हैं। जब कोदई को पकड़कर पुलिस वाले उसे अपने साथ ले जाने लगते हैं, तो गाँव वाले हिंसात्मक होने को होते हैं और तब सत्याग्रह के सिद्धांत की दुहाई देकर सत्याग्रहियों के जत्थे का नायक उन्हें हिंसा करने से रोकने में सफल हो जाता है। पूरा भारतीय समाज इसी तरह से सत्याग्रह से प्रभावित हुआ था।

14.4 स्वाधीनता-आंदोलन का सजीव दस्तावेज

1857 ई. के प्रथम स्वाधीनता-संग्राम से लेकर 1947 ई. में देश के आजाद होने तक के इन नब्बे वर्षों में कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि अनेक विधाओं में विपुल साहित्य लिखा गया है। गाँधी-दर्शन से प्रभावित अनेक कहानियाँ प्रेमचंद के अतिरिक्त जैनेंद्र जैसे कथाकारों ने भी लिखी हैं। लेकिन पूरी की पूरी कहानी सत्याग्रह जैसे रूखे कथानक को लेकर लिखी गई गिनी-चुनी कहानियों में 'समरयात्रा' का नाम विशेष उल्लेखनीय है। नोहरी जैसी भाग्य और परिस्थितियों के द्वारा सताई गई स्त्री के चरित्र को सत्याग्रह जैसे रूखे कथानक से जोड़कर कहानी को रोचक बना देने की क्षमता प्रेमचंद जैसे समर्थवान कथाकार में ही हो सकती थी। नोहरी रूपी पात्र ने न केवल कहानी में प्राण फूँक दिए हैं, अपितु असहाय वृद्धों को समाज-सेवा का एक मार्ग भी सुझा दिया है।

स्वाधीनता-आंदोलन का 1916 ई. से लेकर 1930 ई. का दौर बहुत महत्त्वपूर्ण है। गाँधी जी के भारत आगमन से कांग्रेस में सैद्धांतिक मतभेद पैदा हो गए थे। नरम दल का नेतृत्व महात्मा गाँधी और गरम दल का बाल गंगाधर तिलक कर रहे थे। 1916 ई. में गरम दल द्वारा होम रूल लीग की स्थापना, मॉन्टेस्ग्यू योजना (1917 ई.), रौलट ऐक्ट (1918 ई.), जलियाँवाला बाग हत्याकांड (1919 ई.), खिलाफत व असहयोग आंदोलन (1921-22 ई.) आदि 'समरयात्रा' की पृष्ठभूमि निर्मित करने वाले तथ्य हैं। इस बीच सत्याग्रहों और

असहयोग आंदोलनों का दौर चला था, जिनका व्यापक प्रभाव कहानी के कथानक (प्लॉट) और धरातल (कैनवस) पर दिखाई पड़ता है। पूरे गाँव का पलक-पाँवड़े बिछाकर सत्याग्रहियों का स्वागत कर उल्लसित होना और अंत में सत्याग्रह के रंग में रँग जाना, नोहरी का मदमस्त होकर नाचना, कोदई का घर-गृहस्थी के प्रति मोह त्याग देना, गाँव वालों का पुलिस के भय से मुक्त हो जाना आदि ऐसी गतिविधियाँ हैं, जो कहानी को उद्‌देश्य-पूर्ति की ओर अग्रसर करती हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि 'समरयात्रा' कहानी राष्ट्रीय चेतना के प्रति सचेत करने वाली एवं स्वाधीनता-आंदोलन का सजीव दस्तावेज है।

14.5 समाज के बीच की नायिका : नोहरी

इकाई-8 में हम जान चुके हैं कि प्रेमचंद ने नारी की दशा को देखा, परखा और समझा था, इसलिए न केवल साहित्य में बल्कि व्यक्तिगत जीवन में भी उन्होंने नारियों के साथ न्याय करने की कोशिश की। उनकी 'ईदगाह', 'स्वर्ग की देवी', 'धिक्कार', 'स्त्री और पुरुष', 'उद्धार', 'परीक्षा', 'बूढ़ी काकी' जैसी ढेरों कहानियों के कथ्य के केंद्र में नारी चरित्र ही हैं। सनातन काल से भारतीय समाज में नारी पूज्य रही है; यह अलग बात है कि समय-समय पर उस पर अत्याचार भी होते रहे हैं। अपनी सकारात्मक दृष्टि के कारण प्रेमचंद को जहाँ कहीं कमी दिखाई पड़ी है, तो उसे दूर करने के लिए उन्होंने उसी के अनुरूप कथा की रचना की है। 'मंत्र', 'पूस की रात' जैसी अनेक कहानियों में उन्होंने समतामूलक नारी चरित्रों को उतारा है, जिनकी वही समस्याएँ हैं जो पुरुषों की हैं, जबकि 'बेटों वाली विधवा' में एक ऐसी लाचार वृद्धा स्त्री की कहानी है, जिसके पति का निधन हो चुका है और बेटे अत्याचार पर उतारू हैं। घर-परिवार और समाज के प्रत्येक वर्ग में ऐसी लाचार स्त्रियाँ विद्यमान हैं।

'समर-यात्रा' की नायिका नोहरी भी उम्र का पचहत्तरवाँ पड़ाव पार कर चुकी है और अपने परिवार में अकेली बची है तथा विपन्नावस्था को झेल रही है। हमारे आसपास व चारों ओर के सामाजिक परिवेश में ऐसी अनेक स्त्रियाँ मिल जाएँगी, किंतु ऐसी कम वृद्धाएँ मिलेंगी, जिनमें जीवट बचा हो। नोहरी की आरंभिक छवि प्रेमचंद कुछ इस तरह खींचते हैं– ''अगर कोई प्राणी दुःखी है, तो वह नोहरी बुढ़िया है। वह अपनी झोपड़ी के द्वार पर बैठी हुई अपनी पचहत्तर साल की बूढ़ी सिकुड़ी हुई आँखों2 से यह समारोह देख रही है और पछता रही है। उसके पास क्या है, जिसे लेकर कोदई के द्वार पर जाय और कहे– मैं यह लाई हूँ। वह तो दानों का मोहताज है।'' विपन्नता के सामाजिक अभिशाप से ग्रस्त नोहरी के अच्छे दिनों को याद करते हुए कथाकार कहता है– ''एक दिन उसके पास धन, जन सब कुछ था। गाँव पर उसी का राज था। कोदई को उसने हमेशा नीचे दबाए रखा। वह स्त्री होकर भी पुरुष थी। उसका पति घर में सोता था, वह खेत में सोने जाती थी। मामले-मुकदमे की पैरवी खुद करती थी। लेना-देना सब उसी के हाथों में था, लेकिन वह सबकुछ विधाता ने हर लिया; न धन रहा, न जन रहे– अब उनके नामों को रोने के लिए वही बाकी थी।''

यह तय है कि प्रेमचंद नोहरी के माध्यम से तत्कालीन परिदृश्य के मद्‌देनजर स्त्रियों में जागरुकता लाने के लिए और उन्हें प्रेरित करने के लिए ही नोहरी जैसे पात्र को कैनवस पर उतारते हैं तथा उसके चरित्र में ढेर सारी विशेषताएँ भर देते हैं, मसलन सत्याग्रहियों के जत्थे के आने पर नोहरी का राष्ट्रप्रेम से अभिभूत होकर नाचना, कोदई के सम्मान को ठेस पहुँचाने पर पुलिस से मोर्चा लेना, बुजुर्ग होने के नाते गाँव वालों के प्रति ममत्व भाव से भर जाना, अपने दुःखों को भूलकर सबको देशप्रेम की सीख देना और अंततः स्वयं को

सत्याग्रह और सत्याग्रहियों के लिए समर्पित कर देना। नोहरी के हाव-भाव, उसकी जीवनगाथा, उसकी भाषा, उसके तेवर, उसकी बातें, उसकी प्रतिक्रियाएँ इत्यादि प्रेमचंद ने ऐसे गढ़े हैं कि पाठकों को कोई शंका नहीं रह जाती है और उनको यही लगने लगता है कि नोहरी उनके बीच की ही है।

14.6 भाषा और शब्दावली

सामान्यतः प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में अपने आस-पास के समाज के मध्यवर्गीय एवं निम्नवर्गीय पात्रों को विशेषरूप से चुना है। किसी भी प्रकार के चित्रण को बड़ी बारीकी से करने में प्रेमचंद माहिर हैं, इसीलिए तो उन्हें कथा-सम्राट कहा जाता है। 'समरयात्रा' कहानी में उन्होंने सरल भाषा में वाक्यों की संरचना की है। इस कहानी में प्रयुक्त भाषा की खास बात यह है कि सादृश्यों की प्रविधि में व्यंग्यात्मक उपमानों का अधिकाधिक प्रयोग किया गया है। उदाहरणार्थ, ''उसका वह व्यंग्य सर्प की भाँति उसके सामने बैठा मालूम होता था।'' और ''जिस गृहस्थी पर उन्होंने अपने जीवन के पचास साल होम कर दिए थे; वह इस समय विषैले सर्प की भाँति उनकी आत्मा में लिपटी हुई थी।'' ये दो वाक्य देखे जा सकते हैं।

अन्य कहानियों की तरह इसमें भी तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशज व मिश्रित शब्दों का प्रयोग तो यथास्थान किया ही गया है, व्यंग्यात्मक शब्दावली, व्यंजनापूर्ण सूत्र और उपहासपूर्ण वाक्य पात्रों के आचरण, उनकी मनोदशा एवं सटीक बिंबों के अनुरूप किए गए हैं। लोकप्रचलित क्षेत्रीय भाषा की शब्दावली का प्रयोग अधिकता में किया गया है। अपनी भाषिक प्रौढ़ता के संकेत देते हुए प्रेमचंद देशकाल, वातावरण, पात्रों के परिवेश, उनकी शिक्षा और भूमिका के अनुकूल अभिव्यक्तिपूर्ण भाषा की संरचना व संयोजन करते हैं। नोहरी के स्वकथन का एक अंश, जो उसकी सोच को बड़ी अच्छी तरह जाहिर करता है, का भाषिक सामर्थ्य देखिए– ''हाय! अगर भगवान् ने उसे इतना अपंग न कर दिया होता, तो आज झोपड़े को लीपती, द्वार पर बाजे बजवाती; कढ़ाव चढ़ा देती, पूड़ियाँ बनवती और जब वह लोग खा चुकते, तो अँजुली भर रुपए उनको भेंट कर देती।'' यहाँ यह देखिए कि चंद शब्दों के माध्यम से प्रेमचंद ने न केवल नोहरी की दीन-दशा का वर्णन कर दिया है, बल्कि देशभक्तों के प्रति उसके मंतव्यों को जाहिर करते हुए कहानी की आधारशिला निर्मित कर दी है।

पाठकों में देशप्रेम की भावना जगाने एवं उन्हें प्रेरित करने के लिए कथाकार ने सत्याग्रहियों के स्वरूप के वर्णन के साथ ही 'कौमी तराना' की निर्मिति की है। इस हेतु प्रयुक्त की गई भाषा पर गौर कीजिए– ''हर एक की देह पर खद्दर का कुर्ता था, सिर पर गाँधी टोपी, बगल में थैला लटकता हुआ, दोनों हाथ खाली, मानो स्वराज्य का आलिंगन करने के लिए तैयार हों। फिर उनका कंठस्वर सुनाई देने लगा। उनके मरदाने गलों से एक कौमी तराना निकल रहा था, गर्म, गहरा, दिलों में स्फूर्ति डालने वाला–

एक दिन वह था कि हम सारे जहाँ में फर्द थे,

एक दिन यह है कि हम-सा बेहया कोई नहीं।

एक दिन वह था कि अपनी शान पर देते थे जान,

एक दिन यह है कि हम-सा बेहया कोई नहीं।

प्रेमचंद के भाषिक सामर्थ्य का एक और कौशल उनके द्वारा किए गए नोहरी की उस दशा के वर्णन में है, जिसमें नोहरी वात्सल्य भाव से अभिभूत हो जाती है– ''इस समारोह में

नोहरी की ओर किसी का ध्यान न गया, जो अपनी लठिया पकड़े सब के पीछे सजीव आशीर्वाद बनी खड़ी थी। उसकी आँखें डबडबाई हुई थीं, मुख से गौरव की ऐसी झलक आ रही थी, मानो वह कोई रानी है, मानो यह सारा गाँव उसका है, वे सभी युवक उसके बालक हैं। अपने मन में उसने ऐसी शक्ति, ऐसे विकास, ऐसे उत्थान का अनुभव कभी न किया था।''

कथा-सम्राट की शब्दावली बहुत सशक्त है। पराधीनता की बेड़ी में जकड़ी होने के बावजूद नोहरी अपने स्वाभिमान को नहीं भुला पाती है और इसीलिए पुलिस के दारोगा द्वारा कोदई चौधरी को अपमानित किए जाने पर वह क्रोधित हो उठती है। उसके क्रोध के आवेग को दर्शाने के लिए प्रेमचंद एक सुंदर उपमान का प्रयोग करते हैं। इस उपमान की शब्दावली को देखिए - ''नोहरी इस वक्त दोपहरी की धूप की तरह काँप रही थी।''

इस कहानी का मुख्य चरित्र नोहरी है, जो गाँव की एक ठेठ देहातिन बुढ़िया है, इसलिए प्रेमचंद उसी के व्यक्तित्व के अनुरूप लौकिक भाषा की शब्दावली का प्रयोग बहुतायत में करते हैं। उनकी इंद्रधनुषी भाषा के रंगों की छटा के बीच में नोहरी द्वारा प्रयोग किए गए शब्द एक अलग ही चमक लिए हुए हैं। इन शब्दों की एक लंबी सूची है, किंतु बानगी के लिए कुछ शब्द यहाँ दिए जा रहे हैं - 'परन' (प्राण), 'जोग' (योग्य), 'जतन' (यत्न), 'हुर्र' (देखते-देखते अदृश्य हो जाने वाला), 'नेवता' (निमंत्रण), 'लेंड़ीपन' (कायरता), 'राँड माँड' (चाकरी), 'बखत' (वक्त), 'थुड़ी' (धिक्कारसूचक शब्द), 'धरम' (धर्म), 'मरती दाई' (मरते समय), 'फरीक' (वादी और प्रतिवादी पक्ष), 'जायगी' (जाएगी), 'मुकुत' (मुक्ति) आदि। इस तरह यह निष्कर्ष निकालने में हमें कोई कठिनाई नहीं होती कि प्रेमचंद की भाषा व शब्दावली सशक्त, समर्थ एवं विविध ही नहीं, अनूठी भी है।

14.7 'समर-यात्रा' का मर्म और संवेदना

प्रेमचंद की कहानियाँ मार्मिक और संवेदना की दृष्टि से बेजोड़ हैं। मानवीय पीड़ा और कष्टों को महसूस करते हुए उन्होंने समाज व राष्ट्र के उत्थान और उनसे संबंधित समस्याओं को अपनी कहानियों में प्रमुखता से चित्रित किया है। संवेदना को व्यक्त करने के लिए उन्होंने अनेक प्रविधियाँ विकसित की हैं और उन सबका इस्तेमाल करते हुए कथा-सम्राट ने बड़ी चतुराई से किस्सागोई और वर्णनात्मकता का अपना निजी ढंग बनाया है। वर्णनात्मकता का यही ढंग 'समरयात्रा' कहानी की जान है, जिससे देशवासियों की पराधीनता के दर्द का मर्म बड़ी आसानी से व्यक्त हो जाता है। लोकोक्तियों, मुहावरों, कहावतों आदि के इस्तेमाल से वे भाषा में चार चाँद तो लगाते ही हैं, पात्रों की संवेदना को भी उद्घाटित करते हैं।

'समर-यात्रा' कहानी का मर्म दो बिंदुओं पर केंद्रित है– एक, पराधीन भारत को मुक्त करवाने में देशवासियों को उनकी भूमिका को समझाकर उसी दिशा में उन्मुख करना और दो, देश की दबी-कुचली निरीह जनता के दर्द को व्यक्त करना। नोहरी नामक बुढ़िया के माध्यम से प्रेमचंद इन दोनों ही बिंदुओं पर आगे बढ़ते हैं। कथानक का संयोजन उन्होंने इस तरह से किया है कि आरंभ में आम आदमी की दशा उद्घाटित होती है और फिर बड़ी कुशलता से कहानी के सूत्र सत्याग्रह से जोड़ते हुए देश के स्वाधीनता के आंदोलन से बाँध दिए हैं।

संवेदना के नए आयाम भी हमको इस कहानी में देखने को मिलते हैं। गाँव वालों की संवेदना नोहरी के प्रति, गाँव वालों के प्रति नोहरी की संवेदना, सरकारी कर्मचारियों की देशवासियों के प्रति संवेदनहीनता, पिता की परिवार के प्रति और पुत्रों की पिता के प्रति

संवेदना के मर्मस्पर्शी चित्र हमको कहानी से बाँधे रहते हैं। पुलिस वालों का ग्रामीणों के साथ भेड़-बकरियों जैसा व्यवहार करना और देशवासियों का इस अराजक स्थिति को बर्दाश्त करते रहने के भाव के चित्रण में एक अनोखे मर्म और संवेदना की झलक के दर्शन होते हैं और यह ऐसी संवेदना है, जो भारतवासियों को सचेत कर स्वाधीन होकर स्वतंत्रता का आस्वादन करने की प्रेरणा उनमें भरती है।

14.8 समर-यात्रा : देशप्रेम और राष्ट्रीय चेतना का प्रतिदर्श

'समर-यात्रा' कहानी वास्तव में देशप्रेम और राष्ट्रीय चेतना के प्रतिदर्श के रूप में भी देखी जा सकती है। ऐसा करने के एक नहीं अनेक कारण हैं। सबसे पहला कारण तो सत्याग्रह व स्वाधीनता के नाम पर कहानी के मुख्य और अनेक गौड़ पात्रों की मनोदशा एवं उनके व्यवहार में बदलाव है। उदाहरण के लिए वृद्धावस्था के बावजूद देशप्रेम व राष्ट्र की स्वतंत्रता के नाम पर नोहरी के अंदर एक अनोखी स्फूर्ति भर जाती है। वह वृद्धावस्था को भूलकर नाचती है, सबको उनके कर्त्तव्य का भान करवाती है और अंत में स्वयं को देश की सेवा के लिए समर्पित कर देती है। इसी तरह कोदई चौधरी, बिंदा और अन्य पात्रों की मनोदशा एवं व्यवहार में भी परिवर्तन देखा जा सकता है।

दूसरा कारण गाँव में सत्याग्रहियों के जत्थे का आने का तरीका, गाँव वालों के द्वारा उनके स्वागत में पलक-पाँवड़े बिछाना, गर्मजोशी से उनका आतिथ्य व सत्कार करना और अंततः जत्थे के नायक के भाषण से प्रेरित व प्रभावित होकर भाषण की भावनाओं को आत्मसात् करते हुए उन पर अमल करना।

तीसरा कारण यह है कि अंग्रेजी शासन के अमले के प्रति घृणा का भाव न रखते हुए भी अंग्रेजी राज की खिलाफत की सीख इस कहानी से बखूबी मिलती है।

चौथा कारण है कि कहानी पढ़ने के बाद स्वाधीनता की लड़ाई का आधार हिंसा और खून-खराबा न होकर सत्य, अहिंसा और उपवास आदि (अर्थात् सत्याग्रह) है, यह बात बड़ी आसानी से हर किसी की समझ में आ जाती है। कहानी में जब पुलिस वालों के द्वारा ग्रामीणों पर अत्याचार करने के पश्चात् कोदई चौधरी को गिरतार करने पर गाँव वाले आक्रोशित हो जाते हैं, तो सत्याग्रहियों के जत्थे के नायक द्वारा सत्याग्रह के व्यावहारिक पक्ष से गाँव वालों को अवगत करवाया जाता है तथा दारोगा और उसके सहयोगियों को अभय दिया जाता है।

इस कहानी का देशप्रेम और राष्ट्रीय चेतना का प्रतिदर्श होने का पाँचवाँ और अंतिम कारण यह है कि देश को स्वाधीन करवाने के लिए न केवल भयमुक्त होकर मोह छोड़ने का उदाहरण दिया गया है, बल्कि त्याग और समर्पण की भावना को उद्वेलित भी किया गया है। कोदई चौधरी द्वारा घर-गृहस्थी की चिंता को परे करके पुलिस वालों के साथ रवाना हो जाना और कुछ स्वयंसेवकों के साथ नोहरी का अपना घर-बार व गाँव छोड़कर सत्याग्रहियों के साथ हो लेना त्याग व समर्पण की भावना का ही प्रतीक है।

अब ऐसा कोई कारण नहीं बचता है, जो 'समर-यात्रा' को देशप्रेम और राष्ट्रीय चेतना के प्रतिदर्श के रूप में स्थापित होने में अवरोध पैदा करता हो।

14.9 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ गए होंगे कि—

- प्रेमचंद की 'समर-यात्रा' कहानी की सफलता कथ्य की बजाय शिल्प पर अधिक आधारित है।
- यह कहानी देश की तत्कालीन सबसे बड़ी ज्वलंत समस्या को न केवल रेखांकित करती है, बल्कि उसके निदान की दिशा में ठोस व सार्थक कदम उठाती है।
- वृद्ध, वृद्धाएँ, नारी और पुरुष सभी देश के लिए अपना कुछ न कुछ योगदान अवश्य दे सकते हैं। यदि हमारी सोच सकरात्मक है, तो वृद्धावस्था कोई विवशता नहीं है, बल्कि अपने अनुभव रूपी हीरे से आगे आने वाली पीढ़ियों, समाज और देश को समृद्ध कर सकते हैं।
- आलोच्य कहानी में एक वृद्धा को नायिका बनाकर देशवासियों, विशेषकर युवाओं को प्रेरणा देने का नेक कार्य किया गया है। गाँव में सत्याग्रहियों का आगमन; अनेक गाँव के लोगों का एकत्र होना; सत्याग्रह और स्वराज के बारे में जानना; पुलिस और अत्याचारियों से भयमुक्त होकर हिम्मत के साथ प्रतिरोध करने का तरीका जानना; देश की सेवा के लिए त्याग व समर्पण की भावना पैदा करना और अंततः नए स्वयंसेवकों के साथ नोहरी का सत्याग्रहियों के साथ गाँव छोड़कर चल देना, यही 'समरयात्रा' का सार है।
- अनेक प्रविधियों के ताने-बाने के साथ काल्पनिक चित्रणों, यथार्थ भाषा, सूत्र वाक्यों, व्यंग्यों, सादृश्यों के अलावा उपमानों के माध्यम से संवेदना-शिल्प के सहारे कहानी का विस्तार करते हुए प्रेमचंद देश की स्वत्रंतता की अनिवार्यता को रेखांकित करते हुए नारी से संबंधित दृष्टि भी इस कहानी में निरूपित करने में सफल होते हैं। 'समरयात्रा' के कथानक की कुछ न्यूनताओं के बावजूद अपनी भाषिक प्रौढ़ता और विविध शब्दावली को आधार बनाकर प्रेमचंद मर्म और संवेदना के सार्थक चित्र खींचते हैं एवं इस कहानी को एक प्रतिदर्श के रूप में स्थापित करते हैं।

14.10 अभ्यास

1. नोहरी का चरित्र-चित्रण करते हुए उसकी भूमिका का निर्धारण करिए।
2. 'समर-यात्रा' की कहानी-कला पर प्रकाश डालिए।
3. प्रेमचंद की नारी विषयक दृष्टि सत्याग्रह के मध्य भी स्थिर रही है, सिद्ध कीजिए।
4. 'समर-यात्रा' के कथोपकथन का विश्लेषण कीजिए।
5. देश के स्वाधीनता-आंदोलन के सापेक्ष 'समर-यात्रा' कहानी की विशेषताएँ निरूपित कीजिए।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. *'समर लोक' त्रैमासिकी, प्रेमचंद जन्मशताब्दी विशेषांक* (जन.-मार्च 2005), सं. : मेहरुन्निसा परवेज़,
2. *दलित चेतना की कहानियाँ : बदलती परिभाषाएँ : डॉ. राजमणि शर्मा,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,

3. *हिंदी साहित्य का विवेचनपरक इतिहास : डॉ. मोहन अवस्थी,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

4. कुछ विचार/प्रेमचन्द

5. कलम का सिपाही/अमृतराय

6. प्रेमचन्द घर में/शिवरानी देवी

7. मुंशी प्रेमचन्द/मदनगोपाल

8. प्रेमचन्द और उनका युग/डा0 रामविलास शर्मा

9. *प्रेमचंद, मदन गोपाल,* राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली

10. *प्रेमचंद, प्रकाश चन्द्र गुप्त,* साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

11. *प्रेमचंद और उनका युग, डॉ. रामविलास शर्मा,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

12. *हिंदी कहानी : अंतरंग पहचान, रामदरश मिश्र,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

13. *प्रेमचंद : कुछ विचार,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

14. *कहानी : नयी कहानी, डॉ. नामवर सिंह,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

15. *स्वतंत्रता संघर्ष – डॉ. बिपन चंद्र,* नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली

16. *आधुनिक भारत –डॉ. बिपन चन्द्र,* हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली

17. *प्रेमचंद – घर में, शिवरानी देवी* (शिवरानी प्रेमचंद)

18. *कलम का सिपाही – अमृत राय*

19. *कलम का मजदूर – मदन गोपाल*

20. *भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि – ए. आर. देसाई,* मैकमिलन प्रकाशन, नई दिल्ली

21. *गांधी : एक जीवनी, कृष्ण कृपलानी, अनुवाद : नरेश 'नदीम'* नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY